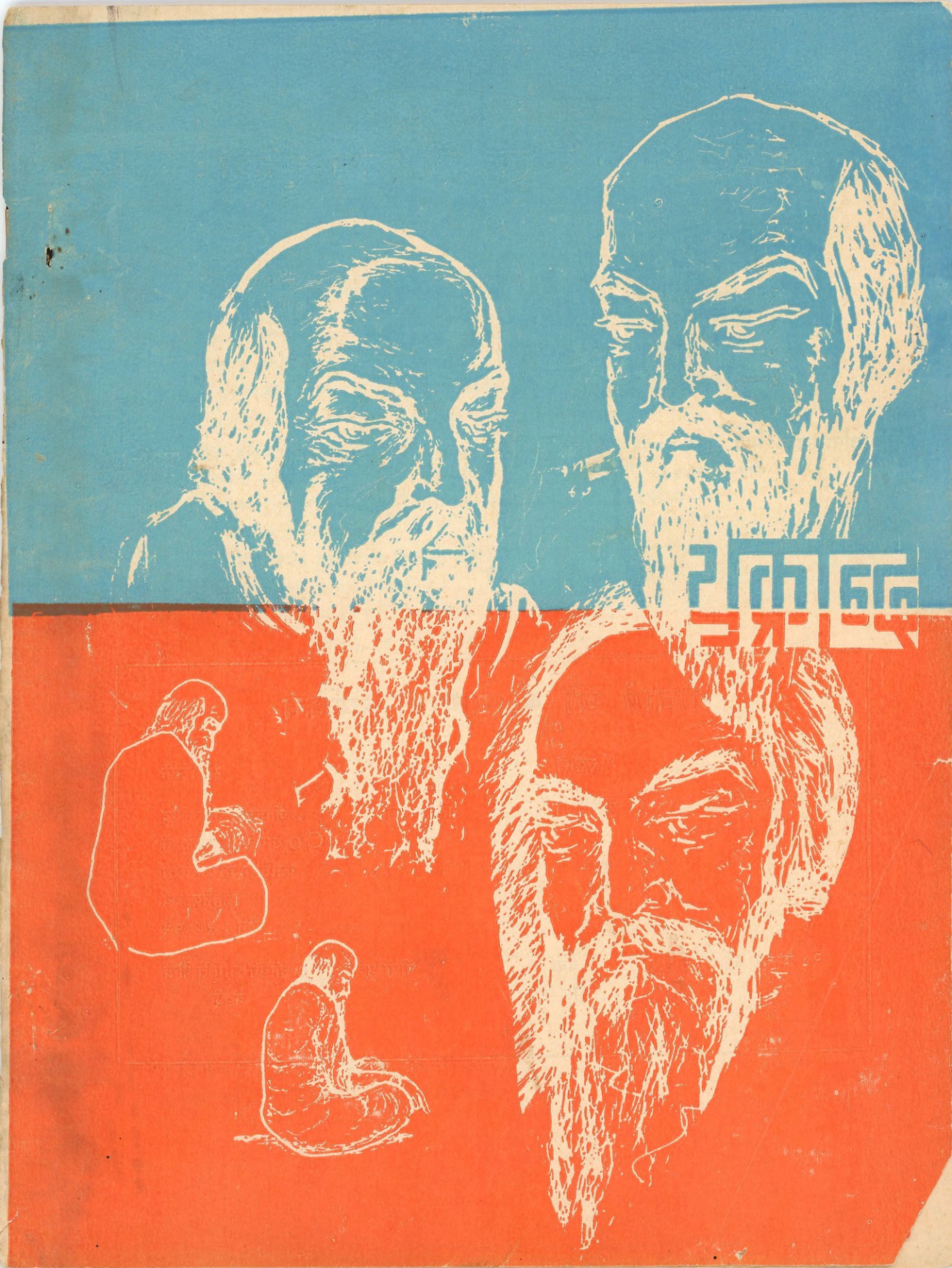

आचार्य श्री के साहित्य की नवीन कृतियां :

●

१—गीता दर्शन	(पुष्प : १)	मूल्य ३/००
२—गीता दर्शन	,, २	,, ४/००
३—गीता दर्शन	,, ३	,, ५/००
४—सम्भावनाओं की आहट		,, ६/००
५—सारे फासले मिट गये		,, १/२५

प्राप्ति स्थल : मंत्री, जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी० एन० रोड, फोर्ट, बम्बई–१
फोन—२६४५३०

●

आचार्य श्री के आगामी कार्यक्रम

दिनांक	स्थान	कार्यक्रम	संयोजक
३ से १२ मई तक	अहमदाबाद	गीता प्रवचन	जीवन जागृति केन्द्र C/o डायचेम कार्पोरेशन खाड़िया चार रास्ता अहमदाबाद फोन : २४०८३
२० से ३१ मई ७१ तक	बंबई (क्रास मैदान)	गीता प्रवचन	जीवन जागृति केन्द्र बंबई

पत्र–प्रेरणा

[आचार्य श्री द्वारा स्वामी अगेह भारती जबलपुर को लिखे गए पत्र]

प्रिय अगेह भारती,
प्रेम। ध्यान में और भी शक्ति लगाओ।
ध्यान के अतिरिक्त शेष समय में भी ध्यान की स्मृति (Remembering) बनाये रखो।
जब भी स्मरण आये—**क्षण भर को तत्काल भीतर डुबकी ले लो।**
मस्तिष्क में शीतलता और बढ़ेगी।
उससे घबड़ाना मत—बिल्कुल बर्फ जमी हुई मालुम होने लगे तो भी नहीं।
रीढ़ में संवेदना गहरी होगी और कभी-कभी अनायास कहीं-कहीं दर्द भी उभरेगा।
उसे साक्षी भाव से देखते रहना है।
वह आयेगा और अपना काम करके विदा हो जायेगा।
नये चक्र सक्रिय होते हैं तो दर्द होता ही है।
और कुछ भी हो तो ध्यान को नहीं रोकना है।
जो भी ध्यान से पैदा होता है, वह ध्यान से विदा हो जाता है।

रजनीश के प्रणाम
७–३–१९७१

प्रिय अगेह भारती,
प्रेम। क्या समर्पण भी सोच समझकर करोगे?
सोच समझ की व्यर्थता के बोध से ही तो समर्पण फलित होता है!
और क्या यह भी पूछोगे कि समर्पण की विधि क्या है?
जहां तक विधियों की **गति** है, वहां तक तो समर्पण (Surrender) नहीं ही है!
और समर्पण भी क्या **तुम** करोगे?
जहां तक तुम हो वहां तक समर्पण कहां?
समर्पण क्रिया भी तो नहीं है—भाषा को छोड़कर।
समर्पण तो समस्त क्रियाओं की कब्र पर खिला फूल है।
समझो नहीं।
करो भी नहीं।
देखो स्थिति—और हो जाने दो (Let Go !) !
समर्पण को रोको मत—बस हो जाने दो।

जैसे सोते हो रात – बस ऐसे ही।
क्या है विधि सोने की ?
क्या है क्रिया ?
क्या करते हो तुम !
थकते हो और पड़ जाते हो—अचेतन के हाथों में !
ऐसे ही थक गए हो आस्मिता से तो अब छोड़ दो स्वयं को अज्ञात के हाथों में !
छोड़ दो बस—चुपचाप।
ऐसे की आवाज भी न हो !

रजनीश के प्रणाम
८–३–१९७१

प्रिय अगेह भारती,
प्रेम। वाह्य और अंतस् में समस्वरता लाओ।
पदार्थ और परमात्मा में विरोध नहीं है।
घर और मंदिर को दो जाना कि उलझे।
संसार और संन्यास में द्वैत नहीं है।
एक को ही देखो **दसों** दिशाओं में।
एक को ही जिओ श्वांस-प्रश्वांस में।
क्योंकि, एक ही है।
लहरों की अनेकता भ्रम है।
सागर का ऐक्य ही सत्य है।

रजनीश के प्रणाम
८-३-१३७१

[माँ योग सम्बोधि, जबलपुर को लिखा गया एक पत्र]

प्रिय योग सम्बोधि,
प्रेम। नया दिया है नाम तुझे—नये व्यक्तित्व के जन्म के लिए।
पुराने से तादात्म्य टूटे—शृंखला विशृंखल हो इसलिए।
अंतराल पड़े बीच में—अलंघ्य खाई निर्मित हो इस आशा में।
भूल जा जो थी—भूल जा उसे जो स्वप्न की भांति आया और जा चुका है।
और स्मरण कर उसका जो सदा है—सनातन और नितनवीन, चिर नूतन को पुकार और पहचान।
यद्यपि वही अनादि भी है।

रजनीश के प्रणाम
९-३-१९७१

अमृत गंगोत्री से

(आचार्य श्री द्वारा जीवन के अंतस् रहस्यों पर अमृतसर में दिया गया उद्बोधन)

संकलन—**श्री सरदारीलाल सहगल, अमृतसर**

सुना है मैंने, एक पूर्णिमा की रात्रि कुछ मित्र एक शराबखाने में इकट्ठे हो गये। देर तक उन्होंने शराब पी और जब वह नशे में नाचने लगे और उन्होंने आकाश में पूरे चांद को देखा तो किसी ने कहा क्या अच्छा न हो हम नदी में नौका बिहार को चलें। और वह नदी की तरफ चले ! मांझी अपनी नौकाओं को बांधकर जा चुके थे। वह एक नाव पर सवार हो गये। उन्होंने पतवारें उठालीं, उन्होंने पतवारें चलानी शुरू कर दीं और वह बहुत रात गये तक पतवारें चलाते रहे, नाव को खेते रहे। और जब सुबह की ठन्डी हवायें आईं और उनका नशा उतरा, तो उन्होंने सोचा कि न मालूम हम कितनी दूर निकल आये हों ! और न मालूम किस दिशा में निकल आये हों ? नीचे उतरकर देख लें। एक व्यक्ति नीचे उतरा और हंसने लगा उसने कहा आप भी नीचे उतर आयें। हम कहीं भी नहीं गये। रात भर वहीं खड़े रहे। नौका वहीं खड़ी थी जहां रात उन्होंने उसे पाया था। वह बहुत हैरान हुए। रात भर की मेहनत का क्या हुआ ? नीचे उतर के पता चला कि नौका की जंजीरें किनारे से बंधी थीं वह छोड़ना भूल गये थे। नशे में ऐसी भूल हो सकती है। लेकिन ऐसी भूल उन लोगों से भी हो जाती है जो नशे में नहीं हैं।

असल में नशे भी बहुत तरह के हैं। कुछ नशे हैं जो दिखाई दे देते हैं, कुछ हैं जो दिखाई नहीं देते हैं। असल में जो नशे में नहीं है और फिर भी ऐसी भूल कर लेते हैं वह भी किसी नशे में होते हैं जो दिखाई नहीं पड़ता है। जाति का नशा है, समाज का नशा है, देश का नशा है, धर्म का नशा है बहुत तरह के नशे हैं जिनमें आदमी बेहोश हो जाता है ! और ऐसी भूल कर लेता है कि जिन्दगी ठहरी रह जाती है उसकी गति रुक जाती है। और हम जिन जिन नावों में सवार हैं वह नावें कहीं भी नहीं पहुंचा पातीं। आम तौर से, जिस दिन हम जन्मे थे जीवन की नाव में बैठे, मरते समय अधिकतम लोग अपने को वहीं पाते हैं जहां जन्मते समय अपने को उन्होंने पाया था, कोई यात्रा नहीं हो पाती। जन्म और मृत्यु के बीच में पतवार बहुत चलाते हैं, श्रम भी बहुत करते हैं, दौड़ धूप भी बहुत उठाते हैं लेकिन कहीं पहुंच नहीं पाते। मरते समय ऐसा नहीं होता कि हम कहें कि कहीं पहुंच गये। शायद मृत्यु के समय किनारे पर उतर के कोई जब देखता होगा तो पाता होगा कि खूंटियों में नाव की जंजीरें बंधी रह गईं।

तो मैं आज कुछ उन जंजीरों की बात करना चाहूंगा, जिनके कारण मनुष्य की आत्मा की नाव परमात्मा के सागर तक नहीं पहुंच पाती। रुक जाती है, ठहरी रह जाती है। श्रम करने के बावजूद भी पतवार चलाने के बाद भी कोई विकास ही नहीं पाता। कौन-कौन सी चीजें हैं जो आदमी की नाव को रोक लेती हैं ?

पहली बात जो आदमी की नाव को बहुत बड़ी जंजीर सिद्ध होती है, वह यह है कि आदमी बिना जाने ही परमात्मा को मान लेता है कि है, बिना जाने मान लेता है कि नहीं। दोनों एकसी ना समझिये हैं। बिना जाने मान लेना भी गलत है। बिना जाने इन्कार कर देना भी गलत है। लेकिन हम सब इन दो नासमझियों में बटे हुए होते हैं। और जिसे हम बिना जाने मान लेते

है उसकी खोज बंद हो जाती है। और जिसे हम बिना जाने इंकार कर देते हैं उसकी भी खोज बंद हो जाती है। खोज तो उसकी हो सकती है जिसे हम मानना नहीं चाहते बल्कि जानना चाहते हैं। मानना मौत है। जानना जीवन है। मानना ठहर जाना है और जानना एक यात्रा है, एक गति है। माने हुए सारे लोग ठहर जाते हैं, सब तरह के विश्वासी, सब तरह के श्रद्धालु ठहर जाते हैं! श्रद्धायें दो तरह की हैं। आस्तिक की एक श्रद्धा है जो हां पर विश्वास करता है नास्तिक की एक श्रद्धा है जो न पर विश्वास करता है लेकिन दोनों श्रद्धालु हैं। और धार्मिक आदमी का श्रद्धालु आदमी से कोई संबंध नहीं। धार्मिक श्रद्धालु नहीं, जिज्ञासु है। धार्मिक आदमी विश्वासी नहीं, खोजी है। धार्मिक आदमी कुछ मानकर ठहरने को तैयार नहीं, जब तक कि जान न ले। जब तक वह जानने के सागर में चला न जाये तब तक वह मानने के किनारे से खूंटी बांधकर ठहरने को तैयार नहीं। वह जानेगा। लेकिन अब तक हमने यही सोचा है कि विश्वास करने वाले लोग धार्मिक होते हैं। विश्वास करने वाला आदमी न धार्मिक होता है न हो सकता है।

विश्वास का मतलब ही यह है कि जो हम नहीं जानते उसे मान लिया है। यह अंधेपन की शुरूआत है। यह अपने को अंधा बनाने का रास्ता है। लेकिन, अब तक निरंतर यही समझाया जाता रहा है कि विश्वास करो अगर भगवान को पाना है। और इसलिये विश्वास बहुत लोगों ने किया और भगवान को पाया बहुत कम लोगों ने। विश्वास तो सभी करते हैं, इस तरफ या उस तरफ। लेकिन भगवान अधिक लोगों को उपलब्ध क्यों नहीं हो पाता? पृथ्वी हजारों साल से विश्वास कर रही है लेकिन पृथ्वी के जीवन में परमात्मा की स्पष्ट झलक नहीं उतर पाती। कितने मंदिर हैं। कितने मस्जिद हैं, कितने गुरुद्वारा हैं, कितनी पूजा है कितने पाठ हैं, कितनी प्रार्थना है, कितना विश्वास है। लेकिन फिर भी पृथ्वी धार्मिक नहीं? पृथ्वी का जीवन तो अधार्मिक है। क्या हो गया है? कारण क्या है? कारण एक, जीवन चलता है ज्ञान से। विश्वास सिर्फ सपने बनकर रह जाते हैं। सत्य नहीं बन पाते। विश्वासों को सत्य बनाया भी नहीं जा सकता। सत्य को जानना हो तो विश्वास छोड़ने पड़ते हैं। मैं नहीं कहता कि अविश्वास करें क्योंकि अविश्वास भी उल्टा विश्वास है। न विश्वास न अविश्वास, दोनों के बीच जो खड़े होने को राजी हैं उसके जीवन में ज्ञान की किरण उतरती है। न जो विश्वास की खूंटी से अपनी नाव बांधता है, न हिन्दू की खूंटी में बांधता है, न मुसलमान की खूंटी से, न जैन की, न ईसाई की, न सिक्ख की, किसी की खूंटी से जो अपने को नहीं बांधता जो कहता है कि हम अनन्त के सागर में नाव छोड़ेंगे किसी भी खूंटी से बांधेंगे नहीं, वह आदमी परमात्मा तक पहुंचने में सफल हो पाता है। और मजा यह है कि हिन्दू जिनका गुणगान करता है वही लोग हैं जो बिना किसी खूंटी से बंधे परमात्मा तक पहुंचे। और सिक्ख जिनका गुणगान करते हैं, वह वही लोग हैं जो बिना किसी की खूंटी से बंधे परमात्मा तक पहुंचे। सब नौका छोड़कर सागर में जाने वाले लोग हम उनके नाम पर भी खूंटियां बांध कर किनारे पर बैठ जाते हैं।

कबीर ने कहा है "जिन खोजा तिन पाईयां गहरे पानी पैठ, मैं बौरी डूबन डरी रही किनारे बैठ" उन्होंने पाया जो गहरे डूबे, और मैं पागल किनारे बैठ कर रह गई। तो किसी ने पूछा कि किनारे बैठकर रह जाने की जरूरत क्या थी? तो कबीर ने कहा कि जिन खोजा तिन पाईयां गहरे पानी पैठ, मैं बौरी डूबन डरी रही किनारे बैठ। मैं डूबने से डर गई इसलिए किनारे पर बैठी रह गई। जो भी डूबने से डरेगा वह खूंटियां पकड़ लेगा, सहारे पकड़ लेगा। और जो डूबने से डरेगा वह परमात्मा तक नहीं पहुंच सकता। क्योंकि जो डूबता है वही उबरता है। जो डूबता है वही पहुंचता है। जो डूबता है वही पाता है।

धर्म के जगत में बचना हो तो डूबना जरूरी है और अगर धर्म से बचना हो तो किनारे पर खूंटियां

पकड़ना बहुत उपयोगी है । खूंटियाँ बहुत पुरानी हो सकती हैं । लेकिन पुरानी होने से कोई खूंटी कम खूंटी नहीं हो सकती । खूंटी बिल्कुल नई हो सकती है लेकिन नई होने से कोई खूंटी, खूंटी नहीं रह जाती ? ऐसा नहीं है खूंटी नई हो कि पुरानी वह काम बाँधने का ही करती है, और धर्म खूंटी नहीं है । धर्म स्वतन्त्रता है । इसलिए धार्मिक आदमी न हिन्दू होता है, न मुसलमान होता है, न सिक्ख होता है, न ईसाई होता है । धार्मिक आदमी बस आदमी होता है । मैं स्वर्ण मंदिर देखने गया, मुझे कुछ मित्र दिखाने ले गए । जो मुझे दिखाने ले गये उन्होंने मुझसे कहा यहाँ सबके लिए जगह खुली है । ईसाई, हिन्दू और मुसलमान । मैंने कहा कि ऐसा मत कहें । क्योंकि ऐसा कहने से ही सभी की हिन्दू, मुसलमान सिक्ख, ईसाई की अलग अलग स्वीकृति हो जाती है कि यह सभी अलग अलग हैं । इतना ही कहें कि आदमी के लिये जगह खुली है । इतना ही काफी है । (तालियाँ) इतना कहना भी कि हिन्दू ईसाई सबके लिए खुला है वही बात हो गई । बन्द हो तब भी वही बात है, खुला हो तब भी वही बात है । हम पृथ्वी पर कब ऐसे मंदिर बनायेंगे जिनमें सिर्फ आदमी होना ही काफी होगा । उसकी कोई पहचान न होगी । अब तक हम नहीं बना पा रहे । हजारों वर्षों से इसकी कोशिश होती है । कभी कोई बुद्ध, कभी कोई महावीर, कभी कोई नानक, कभी कोई क्राइस्ट, कभी कोई कृष्ण ऐसा मंदिर बनाने की कोशिश करते हैं । परन्तु हम ऐसे पागल हैं कि उस मंदिर की खूंटी गाड़ लेते हैं । हम उस मंदिर पर भी कब्जा कर लेते हैं । हम उस मंदिर को भी किसी का बना देते हैं । और जो मंदिर किसी का बन जाता है, वह मंदिर परमात्मा का नहीं रहता । परमात्मा का होने के लिए उसको किसी का होना अयोग्यता है । वह किसी का भी नहीं होना चाहिए, तभी वह सभी का हो सकता है । जब वह किसी का होता है तब वह सभी का नहीं रह जाता । और जब हम स्वीकृति देते हैं तभी भूल हो जाती है । मैं अभी अहमदाबाद में गया । वहाँ कुछ हरिजन मित्र मुझे मिलने आये । उन्हों ने मुझे कहा कि गाँधी जी आते थे तो हरिजनों के घर ठहरते थे । आप हमारे हरिजनों के घर क्यों नहीं ठहरते ? मैंने उनसे कहा कि मैं तुम्हारे घर ठहर सकता हूं लेकिन हरिजन के घर नहीं ठहर सकता । क्योंकि इतनी भी स्वीकृति देना कि तुम हरिजन हो और तुम्हारे घर में ठहरता हू क्योंकि तुम हरिजन हो अन्याय है, अधर्म है, गल्ती है । कोई आदमी कहता है कि तुम हरिजन हो हम न छुयेंगे । यह भी तुम्हें हरिजन मानता है । एक आदमी कहता है कि हम तुम्हारे घर ठहरेंगे, क्योंकि तुम हरिजन हो, यह भी तुम्हें हरिजन मानता है । तुम्हारे घर मैं ठहर सकता हूं लेकिन हरिजन की तरह नहीं, आदमी होना काफी है । हमें यह दिखाई नहीं पड़ता । हिन्दु, मुसलमान लड़ें तो भी दुश्मन होते हैं । तो भी दो होते हैं । कोई कहता है कि हिन्दु मुसलमान भाई भाई, यह भी दो रहते हैं, फर्क नहीं पड़ता । भाई भाई कहने वाला भी एक नहीं मानता । लड़ने वाला भी एक नहीं मानता । एक तो वही मान सकता है जो कहे तुम हिन्दू कैसे ? तुम मुसलमान कैसे ? तुम कोई भी नहीं हो । आदमी होना सत्य है । बाकी सब हमारी सिखावन है, जो हम ऊपर से थोप देते हैं । इन सिखावनों ने खूंटीयाँ खड़ी कर दी हैं । और धार्मिक आदमी कैसे पैदा हो ? इसके बारे में सूत्र की बात मैं आपसे कहना चाहूंगा । एक तो धर्म के सम्बन्ध में यह बात ठीक से समझ लें, कि धर्म और विद्याओं जैसी विद्या नहीं है । दुनिया में बहुत तरह की विद्याएँ हैं । धर्म उनमें से एक विद्या नहीं । अगर दुनिया में कोई चीज सीखना है तो किसी और से सीखनी पड़ेगी । अगर कोई चीज सीखनी है दुनिया में तो और किसी से सीखना पड़ेगा । धर्म अकेली ऐसी विद्या है कि सीखनी हो तो दूसरे से सीखने से बचना । अन्यथा मुश्किल हो जायेगी । असल में, धर्म दूसरे को स्वीकार ही नहीं करता । धर्म अकेली ऐसी विद्या है, जो स्वयं ही सीखी जाती है । जिसमें दूसरे के सीखने की गुंजाइश नहीं । इसके कारण सत्य Transferable नहीं है । यह एक हाथ से दूसरे हाथ में नहीं दिया जा सकता । जगत में सब चीजें एक हाथ से दूसरे हाथ में दी जा सकती हैं । धर्म का ज्ञान भर एक हाथ से दूसरे हाथ में नहीं दिया जा सकता । और दिया जाये तो बासा और

उधार हो जाता है । और बासा होते ही अज्ञान से भी बदतर हो जाता है । अज्ञान की एक खूबी है कि अज्ञान विनम्र होता है । और उधार ज्ञान का एक खतरा है । उधार ज्ञान अहंकार से भर जाता है । वह द्वेष से भर जाता है । और मजा यह है कि जो ज्ञान भीतर से पैदा होता है उसके पैदा होते ही अहं ऐसे भीतर से दूर हो जाता है जैसे सुबह के सूर्य निकलने से अंधेरा दूर हो जाता है । खुद के ज्ञान पैदा होने पर अहंकार कहीं नहीं पाया जाता । लेकिन दूसरे से लिया गया ज्ञान अहंकार को मजबूत करता है । पुष्ट करता है और भीतर कड़ी, सख्त चीज पैदा करता है । वह कड़ा अहंकार ही परमात्मा से मिलने पर बाधा उत्पन्न करता है । धर्म दूसरे से कभी उपलब्ध नहीं होता । इसका मतलब यह नहीं कि दूसरा बिल्कुल बेकार है । जब कभी कोई एक बुद्ध हमारे बीच से गुजरता है तो बुद्ध हमें ज्ञान नहीं दे सकता । और जब कभी नानक गीत गाता हुआ हमारे बीच से गुजरता है तो नानक हमें ज्ञान नहीं दे सकते । लेकिन एक बुद्ध और एक नानक के गुजरने से हमारी प्यास जाग सकती है । ज्ञान नहीं मिल सकता, प्यास जाग सकती है उन्हें देखकर हमें इस बात का स्मरण आ सकता है जो कि उन्हें सम्भव हुआ । व मुझे भी सम्भव हो सकता है । ज्ञानी धर्म की दुनिया में ज्ञान का देने वाला नहीं, सिर्फ प्यास का जागाने वाला है । लेकिन प्यास जगाने के बाद कुआं तो अपने भीतर ही खोजना पड़ता है । पानी को अपने भीतर ही खोजना पड़ता है, वह कोई दूसरा नहीं दे सकता । अगर दूसरा दे सकता होता तो एक ही ज्ञानी ने सारी दुनिया को ज्ञान दे दिया होता । उसका कारण है क्योंकि ज्ञानी में इतनी करूणा है कि वह रूकता ही नहीं वह सबको बांट देता है । लेकिन वह दिया नहीं जा सकता सब ज्ञानी तपड़ते हुए मरते हैं । अपने लिए नहीं दूसरों के लिए । क्योंकि जो मिल गया है वह देना चाहते हैं लेकिन वह दिये नहीं जा पा रहा । देते हैं कि बदल जाता है । हाथ से दिया दूसरे के पास गया कि वह बदल गया । क्योंकि जब देते हैं तो अनुभूति तो उसके पास रह जाती है परन्तु शब्द दे देते हैं । और शब्दों का अर्थ, शब्दों के अर्थ देने वाले जैसा नहीं होता । जिसके पास शब्द पहुंचते हैं, वही उसका अर्थ तय करता है । गीता की एक हजार टीकाएँ है । कृष्ण का दिमाग तो खराब नहीं रहा होगा कि गीता के एक हजार अर्थ रहे हों । कृष्ण जैसा आदमी का अर्थ समुचित रूप से रहा होगा । लेकिन एक हजार टीकाएँ ? गीता के एक हजार अर्थ करने वाले यह अर्थ कहाँ से लाये ? यह कृष्ण के अर्थ नहीं हैं । यह हजार टीका करने वालों के अर्थ हैं । गीता को पढ़ते हैं जब हम, वह कृष्ण की गीता नहीं होती । हम उसमें अपना अर्थ डाल कर पढ़ते हैं । हम ही उसमें होते हैं । आज तक दुनिया में कृष्ण की गीता को, कृष्ण जैसा हुए बिना पढ़ने का उपाय भी नहीं है । हम ही अपना अर्थ डालेंगे । इसलिए मैं कहता हूं कि शास्त्र में भूलकर भी मत पकड़ना । क्योंकि शास्त्र में आपकी ही छवि झलकेगी । और कुछ भी होने वाला नहीं, हम शास्त्र में अपने को ही पढ़ते हैं । यह इसलिए कि एक शास्त्र को दो आदमी पढ़ते है, तो दो मतलब निकलते हैं ।

एक रात ऐसा हुआ कि एक सभा में बुद्ध ने अपना प्रवचन दिया । प्रवचन के बाद रोज रात को वे अपने भिक्षुओं से कहते थे कि अब जाओ और अब रात के आखिरी काम में लग जाओ । उस दिन एक चोर भी आया हुआ था । जब बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि रात के आखिरी काम में लग जाओ, तो वह चोर भी उठा और उसने कहा कि बड़ी देर हो गई, समय हो गया काम का । एक वेश्या भी आई थी । जब बुद्ध ने कहा कि जाओ रात के काम में लग जाओ तो वेश्या ने कहा कि मैंने कितनी देर गवाँ दी । ग्राहक वापिस लौट गये होंगे । और भिक्षु उठकर ध्यान करने चले गये । क्योंकि भिक्षुओं का रात का काम था कि वे ध्यान करें और फिर सो जायें । वेश्या अपनी दुकान चलाने चली गई । चोर अपने काम में लग गया । भिक्षु ध्यान करने लगे । बुद्ध ने ही एक शब्द कहा था जाओ रात के काम में लग जाओ । अर्थ कौन देगा ? अर्थ हम देते हैं । इस शास्त्र को पढ़कर सत्य न मिलेगा । आप ही मिल जायेंगे ।

सत्य नहीं मिलने वाला। सत्य तो मिलेगा, किसी और यात्रा से। सत्य तो मिलेगा, स्वयं को खोने से। शास्त्र में तो स्वयं का ही दर्पण बन जाता है। और हम अपने को ही पढ़ लेते हैं। इसलिए कुरान को जब मुसलमान पढ़ता है तो और मतलब निकाल लेता है। जब हिन्दू पढ़ता है तो और मतलब निकाल लेता है। वेद को जब वेद को मानने वाला पढ़ जाता है तो और मतलब निकालता है और जब नहीं मानने वाला पढ़ता है तो और मतलब निकाल लेता है। मतलब हमारे हैं। और यदि हमारे हों सत्य होते तो हमें वेद तक जाने की क्या जरूरत है ? हम सब तो थे ही। नहीं, हमारे चलते काम नहीं चलेगा। हमें मिटना पड़ेगा। शास्त्र हमें मिटा नहीं सकता। हम शास्त्रों को भी अपना आभूषण बना लेते हैं। अगर आप दस शास्त्र जान लेते हैं तो आपका अहंकार और मजबूत हो जाता है। पंडितों से ज्यादा अहंकारी आदमी खोजना बड़ा कठिन है। जिनको भी ख्याल हो गया कि वह जानता है, वह मुश्किल में पड़ जाते हैं। जानने का अहंकार इस जगत में सबसे गहरा अहंकार है। इसलिए पंडित निरन्तर लोगों को लड़ाई में ले जाते हैं। इस जमीन पर जो लड़ाईयाँ हुई हैं वह अज्ञानियों के कारण नहीं। उसके पीछे कारण हम सब झूठे ज्ञानी हैं। अज्ञानी तो बेचारे उनके चक्कर में पड़कर लड़ते रहते हैं। सारी लड़ाई झूठे ज्ञानियों के द्वारा पैदा होती है। क्योंकि झूठा ज्ञान भीतर अहंकार से भरा होता है। नहीं ! धर्म ऐसी विद्या नहीं है कि शास्त्र से मिल जाय। धर्म ऐसी विद्या है जो स्वयं को खोने से मिलती है। गणित सीखना हो तो स्वयं को मिटाने की कोई जरूरत नहीं। इतिहास पढ़ना हो तो स्वयं को मिटाने की कोई जरूरत नहीं। साइंस पढ़नी हो, इन्जीनियर बनना हो, या डाक्टर बनना हो तो स्वयं को मिटाने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन अगर धर्म के जगत् में जाना हो तो स्वयं को मिटाने की तैयारी चाहिए।

मैंने सुनी है एक कहानी। मैंने सुना है कि यूनान में एक बहुत बड़ा मूर्तिकार हुआ। उस मूर्तिकार की बड़ी प्रशंसा थी, बड़े दूर-दूर के देशों तक। और लोग कहते थे कि अगर उसकी मूर्ति रखी हो बनी हुई और जिस आदमी की उसने मूर्ति बनाई है, वह आदमी भी खड़ा हो जाए उसके पड़ौस में सांस बंद के तो बताना मुश्किल है कि मूल कौन है और मूर्ति कौन है ? दोनों एक दूसरे से मालूम पड़ते हैं। उस मूर्तिकार की मौत समीप आई तो उसने सोचा कि मौत को धोखा क्यों न दे दूं ? उसने अपनी ही ग्यारह मूर्तियाँ बनाकर तैयार कर दीं। और उन मूर्तियों के साथ छिप कर खड़ा हो गया। मौत भीतर आई तो उसने देखा कि बारह एक जैसे लोग, तो बड़ी मुश्किल में पड़ गई होगी। मैं एक को लेने आई थी। इन बारह में से किसको ले जाया जाए। फिर कौन असली है। वह वापिस लौट गई। उसने परमात्मा से कहा कि बहुत मुश्किल में पड़ गई हूं। वहाँ बारह एक जैसे लोग हैं, असली को कैसे खोजूं ? परमात्मा ने उसके कान में एक सूत्र कहा कि इसे सदा याद रखना। यदि असली को खोजना होगा तो इस तरह खोज लेना। यह तरकीब है असली को खोजने की। मौत वापिस लौटी। उस कमरे के भीतर गई। उसने मूर्तियों को देखा और कहा कि मूर्तियाँ बहुत सुन्दर बनी हैं। लेकिन सिर्फ एक भूल रह गई। वह जो चित्रकार था वह बोला कि कौन सी भूल ? उस मृत्यु ने कहा कि बस यही कि तुम अपने को नहीं भूल सके। अब बाहर आ जाओ। और परमात्मा ने मुझसे कहा कि जो अपने को नहीं भूल सकता उसे तो मरना ही पड़ेगा। और जो अपने को भूल जाये उसे मारने का कोई उपाय नहीं, वह अमृत को उपलब्ध हो जायेगा। धर्म अपने को भूलना है। क्योंकि धर्म अमृत की उपलब्धि है। लेकिन अपने को हम कैसे भूलें ? अपने को तो हम सदा याद रखते हैं। चौबीस घंटे याद रखते हैं। अपने को तो हम चारों तरफ से सजा कर सवाँर कर रखते हैं। अपने को तो हम चारों तरफ से पत्थर की मजबूत दीवालों में सुरक्षित रखते हैं। कहीं से हमें कोई चोट न पहुंच जाये, कहीं हम मिट न जायें थोड़े भी, हम बहुत इन्तजाम करके रखते हैं। हमारी सारी जिंदगी का इन्तजाम अपने को बचाने का इन्तजाम है। और कभी हम परमात्मा के द्वार पर भी जाते हैं तो परमात्मा से

भी थोड़ी बहुत सेवा लेने जाते हैं हम। अपने को बचाने की कोई सेवा को हम चाहते हैं। किसी को नौकरी चाहिए तो वह जाता है। किसी को धन चाहिए तो वह जाता है, किसी को बेटा चाहिए तो जाता है। किसी को बीमारी मिटानी है तो जाता है। किसी को लाटरी जीतनी है तो वह जाता है। हम परमात्मा के द्वार पर अपने को बचाने जाते हैं। परमात्मा से भी थोड़ी सेवा लेने का इरादा होता है। हमारा अहंकार भी अद्भुत है। परमात्मा को भी थोड़ी बहुत नौकरी में हम लगाना चाहते हैं। इरादे तो हमारे यही रहते हैं। बल्कि हम कहते भी यही हैं कि हमारी नौकरी कर दो तो हम मान लेंगे। जैसे कि वह हमारे मानने का इतना भूखा होगा कि हमारी थोड़ी बहुत नौकरी भी कर दे। हम परमात्मा के दरवाजे पर अपने को बचाने के लिए ही जाते हैं। तो हम उसके दरवाजे पर कभी पहुंच ही नहीं पाते। फिर हम झूठे दरवाजों पर पहुंच जाते हैं। वे आदमी के बनाये हुए होते हैं और उन्हीं दरवाजों को हम परमात्मा का दरवाजा समझकर लौट आते हैं। परमात्मा का दरवाजा तो वही है जिस पर लिखा हो कि आप भीतर न जा सकेंगे। पहले अपने को बाहर छोड़ो फिर भीतर आओ।

बंगाल में एक छोटा सा नाटक : ग्रामीण नाटक है। उस नाटक में एक यात्री वृन्दावन की यात्रा को गया। वह एक फकीर है। उसके पास कुछ भी नहीं है। एक छोटी सी झोली है। जिसमें उसके थोड़े से कपड़े बर्तन वगैरा हैं। वह जब वृन्दावन के मंदिर तक पहुंचता है तो द्वारपाल उससे कहता है कि ठहरो। भीतर कुछ ले जा न सकोगे। तो वह अपनी झोली जिसमें कपड़े बर्तन वगैरा हैं बाहर ही छोड़ देता है। वह कहता है कि अब तो मैं जा सकता हूं। झोली कपड़े बाहर छोड़ दिये हैं। तब वह द्वारपाल कहता है कि झोली और कपड़े ले जाना चाहो तो ले जाओ। अपने को बाहर छोड़ो। झोली कपड़े से कोई दिक्कत नहीं। ले आओ उठाकर, लेकिन अपने को बाहर रख जाओ। अपने को भीतर न ले जा सकोगे।

असल में एक ही शर्त है उसके दरवाजे पर। और वह शर्त अपने को खोने की शर्त है। ज्ञान जो हम दूसरों से ले लेते हैं वह अपने को मजबूत करता है। मिटाता नहीं। यहाँ तक कि त्याग और तपस्या भी अहंकार को मजबूत कर जाते हैं, मिटाते नहीं। किसी ने अगर उपवास कर लिया है, या कोई शीर्षासन करके खड़ा हो गया है। साधक, तपस्वी और संन्यासी सबका अहँकार बहुत ही गहरा हो चुका है। वह उसी घनी अहँकार की छाया में जीने लगते हैं। और सोचते हैं कि परमात्मा भी उन्हीं के पीछे आया है। परमात्मा के पीछे वह जाने को तैयार नहीं होते। इसलिए वह परमात्मा पर भी आरोपण करते हैं कि इस शक्ल में मिलो तो ही। जैसा हम चाहते हैं उस शक्ल में ही मिलो। तो हिन्दु अपनी शक्ल थोपता है, मुसलमान अपनी शक्ल थोपता है, जैन अपनी शक्ल थोपता है। परमात्मा को भी कहते हैं कि उस शक्ल में आना जो हमने मांग की है। ईसाई अपनी शक्ल थोपता है। हम परमात्मा को भी उसी में मानने को राजी नहीं। हम बहुत अद्भुत लोग हैं। हमारे अद्भुत होने का कोई ठिकाना नही। लेकिन हम इन्हीं सारी बातों को धर्म कहते हैं। और यदि हम सोचते हैं कि इन सारी बातों को करके हम सत्य को और परमात्मा को पाने में समर्थ हो जायेंगे तो हम गलत सोचते हैं। दूसरी बात मैं आपसे कहना चाहता हूं कि शास्त्र से नहीं मिलेगा धर्म। स्वयं से मिलेगा। हांलाकि स्वयं से मिलने पर शास्त्र निर्मित हो सकते हैं। लेकिन शास्त्र के जानने पर सत्य नहीं मिल सकता। सत्य मिलने पर शास्त्र जरूर निर्मित हो जाते हैं। जिन्हें भी सत्य मिल गया वह कहना चाहते हैं दूसरों को कि हमें क्या मिल गया। यह जानते हुए भी कि शब्द नहीं कह पाते हैं। एक गूंगे को भी मिठाई मिल जाए तो वह भी शोर गुल मचा कर कहता है कि बहुत आनंद आया। लेकिन आप उसके शोर गुल को पकड़ लें और घर में जाकर शोर गुल मचाने लगें और समझें कि मिठाई मिल जायेगी तो आप गलती में पड़ गये हैं। जिन्हें सत्य कि मिठाई मिली उन गूंगे हो गये हैं लोगों का शोर गुल, उन्होंने कहने की बड़ी कोशिश की, लेकिन कह नहीं पाये।

उसका कारण यह नहीं कि वे कमजोर थे कहने में। उसका कारण यह है कि कहना ही असमर्थ है, सत्य को प्रगट करने के लिए।

लाओत्से ने एक छोटी सी किताब लिखी, और उस किताब का पहला वचन जो उसने लिखा है बड़ा अद्भुत है। उसने पहला वचन यह लिखा है कि सबसे पहले तो मैं यह कहना चाहता हूं कि जो मैं कहने जा रहा हूं वह मैं कह न पाऊँगा। दूसरी बात मैं यह कहना चाहूंगा कि जो मैं कहूं वह पकड़ न लेना। क्योंकि जो मैं कहना चाहता था वह बात और थी और जो मैं कह रहा हूं वह बात ही और है। रवींद्रनाथ मर रहे थे। मरणशय्या पर पड़े थे। एक मित्र मिलने आया, और उसने रवींद्रनाथ से कहा कि आप तो तृप्त होकर मर रहे होंगे। आपने तो जिन्दगी में वह सब पा लिया जो एक आदमी पा सकता है। आप महाकवि थे। आपने छः हजार गीत लिखे। यारुप शैली में को महाकवि कहते हैं उसके भी दो हजार गीत हैं आपके छः हजार गीत हैं। आपके छः हजार गीत संगीत में बाँधे जा सकते हैं। शायद पृथ्वी पर इतना बड़ा महाकवि कभी नहीं हुआ। उस मित्र ने कहा कि आप तो तृप्त हैं। रवींद्रनाथ की आँखों से आँसू गिर पड़े। रवींद्रनाथ ने कहा, नहीं, मैं जो गाना चाहता था अभी गा नहीं पाया। यह छः हजार तो मेरी कोशिशें थीं जो असफल गईं। यह तो छः हजार मैंने प्रयास किये जो सफल नहीं हो सके। अभी जो मैं गाना चाहता था वह गा नहीं पाया। वह तो भीतर रह गया और मरने का वक्त आ गया। अब मैं आँख बंद करके भगवान से यही कह रहा हूं कि अभी साज ही बिठा पाया था अभी गाया कहाँ? और जाने का वक्त आ गया! लेकिन फिर मैं सोचता हूं कि अगर अनंत जन्म भी मुझे मिल जायें तो मैं साज ही बिठा पाऊँगा, गा न पाऊँगा। क्योंकि जो गाने योग्य है वह सब पकड़ के बाहर छूट जाता है। वह न शब्द में पकड़ता, न इशारे में पकड़ता है, न रंग में पकड़ता। वह किसी रेखा में नहीं पकड़ता, वह बाहर छूट जाता है। वह अनन्त है, वह असीम है। वह कैसे पकड़ में आवेगा।

नहीं, किताबें उसे नहीं पकड़तीं। कोई भी उसे कभी नहीं पकड़ पाया है। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कह रहा हूं कि किताबें फेंक दो। इसका केवल इतना ही मतलब है कि किताबों को भी देखें तो समझ में आ जायेगा कि जो कहना चाहने की कोशिश की गई थी वह नहीं कहा जा सकता है। सब किताबें एक ही इशारा करती हैं कि वह अनकहा छूट गया। वह नहीं कहा गया है। सब इशारे एक बात कहते हैं कि Unexpressed। अभी तक वह अभिव्यक्त नहीं हुआ। वह प्रकट नहीं हो सकता। आदमी की वाणी छोटी पड़ गई है, वह बहुत विराट है। वह समा नहीं पाता। हम चिल्लाते हैं, प्रकट करने की कोशिश करते है, वह अप्रकट रह जाता है। इसलिए मैं आपसे कहना चाहूंगा कि प्रभु जाना तो जा सकता है कहा नहीं जा सकता। इसलिए कोई धर्म शास्त्र बन नहीं सकता। बना भी नहीं, बनेगा भी नहीं। ऐसा कोई शास्त्र नहीं जिसको आप जानकर धर्म को जान लेंगे। हाँ धर्म को आप जानलें तो सब शास्त्रों को आप जान जायेंगे। धर्म को जान लें तो सब शास्त्रों का Secret, राज खुल जायेगा। आप जान लेंगे कि ठीक है। पा गये लोग, गूंगे हो गये थे, उन्होंने चिल्ला चिल्लाकर कहा है पर आवाज ही निकली है। जो कहना था वह छूट गया है। धर्म को जान लें तो शास्त्र समझ में आ जायेंगे, लेकिन शास्त्र को जानकर धर्म समझ में नहीं आ सकता है। इस बात को ठीक से ध्यान में ले लें, अन्यथा धर्मशास्त्र खूंटी बन जाते हैं।

दूसरी बात, वह भी ध्यान में ले लें, नहीं तो वह भी बहुत बड़ी खूंटी है, और वह खूंटी यह है कि यदि आप सोचते हों कि जैसे आपने धन पाया, यश पाया, पद पाया, ऐसे ही आप प्रभु को पायेंगे तो आप भूल में पड़ जावेंगे। धन भी अहंकार की उपलब्धि है, यश भी अहंकार की उपलब्धि है, पद भी अहंकार की उपलब्धि है। प्रभु को इसी मार्ग से नहीं पाया जा सकता, क्योंकि वह अहंकार की उपलब्धि नहीं, अहंकार का खोना है। दोनों में विरोध है। इसलिये संसार में जिस ढंग से पाते

हैं उसी ढंग से हम सत्य को नहीं पा सकते। लेकिन स्वभावतः, जो हमारी आदत संसार में पाने की होती है उसी आदत को हम परमात्मा पर भी लगाने की कोशिश करते हैं। जो हमारा अनुभव होता है कि जीवन में हमने धन वैसे पाया, वैसे हम परमात्मा को भी पाने चल पड़ते हैं। वहाँ बड़ी भूल हो जाती है। इस भूल से सावधान होना जरूरी है। उसे पाना हो तो एक बात का तो निर्णय कर ही लेना, वह यह कि अपने को खोना पड़ेगा। अपने को खोये बिना कोई रास्ता नहीं, नदी जब खोती है अपने को तो सागर हो जाती है, और बीज जब अपने को खोता है तो वृक्ष हो जाता है। और मनुष्य जब अपने को खोता है तो प्रभु हो जाता है।

खोने से, खोने से मिटता नहीं है, खोने से सिर्फ उसका जो छोटा पन है वह मिटता है। खोने से उसकी जो सीमा है वह मिटती है। खोने से उसकी जो क्षुद्रता है वह मिटती है। खोने से वह मिटता नहीं, खोने से ही वस्तुतः तो वह हो पाता है। लेकिन, हमारी कठिनाई है। हमारी कठिनाई है कि बीज अगर सोच ले कि मैं मिट जाऊँ, अपने को बचा लूं तो बीज अपने को बचा सकता है। लेकिन तब वृक्ष पैदा नहीं होगा। और वृक्ष पैदा न हो तो बीज के प्राण सदा के लिए रोते रह जायेंगे। हम भी ऐसे बीज हैं जिनने अपने को बचाने की कोशिश की है। नानक या कबीर या फरीद ऐसे बीज हैं जिन्होंने अपने को खोने की तैयारी की। और वे वृक्ष बन गये। और अब उन वृक्षों के नीचे हजारों लोग छाया ले सकते हैं। और हम ऐसे बीज हैं कि हमारे नीचे छाया लेने का सवाल ही नहीं। हमारे नीचे कुछ होने का सवाल ही नहीं। हम सिर्फ सड़ते हैं। अगर बीज वृक्ष न हो तो सिर्फ सड़ सकता है। और क्या करेगा? बीज के लिये दो ही रास्ते हैं। या तो वृक्ष हो जाये या फिर सड़े। तो हम सिर्फ सड़ते हैं। जिसे हम जीवन कहते हैं वह सिर्फ सड़ने की लम्बी प्रक्रिया है। बच्चा बूढ़ा होता है बस और कुछ नहीं होता। बच्चा रोज बूढ़ा होता जाता है और हम सोचते हैं कि जीवन बढ़ता है। रोज मरते हैं और कुछ भी नहीं होता। कल से आज तक आपने क्या किया है? २४ घंटे और मर गये। जन्म से मरने तक हम जीते नहीं। जन्म से मरने तक हम मरते ही हैं। लेकिन लम्बे फासले की वजह से हमें ख्याल में नहीं आता, कि जिसे हम जिन्दगी कहते हैं, वह Slow Death है, Gradual Death है धीरे-धीरे मरते जाना। एक दिन का बच्चा एक दिन मर गया है। दो दिन का बच्चा दो दिन मर गया है। ७० वर्ष का आदमी ७० वर्ष मर गया है। गया, समाप्त हो गया।

मैंने सुनी है एक घटना कि एक रात सम्राट ने एक सपना देखा। सपना देखा कि रात में एक छाया उसके कंधे पर हाथ रखे खड़ी है। उसने लौटकर पीछे देखा और बहुत घबड़ा गया, पूछा कि तू कौन है? छाया ने कहा पहचानते नहीं अब तक? डर गये हो तो, पहचान तो मैं गई कि तुम समझ गये हो। क्योंकि कई बार पहले मैं आई हूं लेकिन तुम अजीब हो कि बार-बार भूल जाते हो। असल में जिससे हम भयभीत होते हैं उसे हम भूलने की कोशिश करते हैं। भूलने से कुछ मिटता नहीं। उसने कहा मैं तुम्हारी मौत हूं और आज शाम आ रही हूं। इतनी खबर देने आई हूं कि शाम सूर्य डूबने पर ठीक जगह पर और ठीक समय पर मिल जाना। ऐसा न हो कि मैं वहां पहुंचूं और तुम यहां वहां हो जाओ। सम्राट पूछना चाहता था कौन सी जगह? इसलिये नहीं कि वहां पहुंच जायें बल्कि इसलिए कि भूल से वहीं पहुंच न जायें। लेकिन जब उसने पूछा कौन सी जगह, तो इतने जोर से पूछा कि नींद टूट गई। और सपना खो गया। और वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। आधी रात थी वजीरों को बुलाकर उसने खबर की, जो लोग भी इस सपने का अर्थ कर सकते हों उनको बुलाओ। बात ही बात में गांव के पंडित इकट्ठे हो गए। वे अपने शास्त्र ले आये। पण्डित के पास सिवाय शास्त्र के कुछ और होता भी नहीं। बुद्धि तो होती नहीं। शास्त्र ही होता है। वे उसे ले आए और सबने अपने शास्त्र खोल लिये और व्याख्या करने में लग गए। सुबह होने लगी, सूर्य निकलने लगा। सम्राट ने कहा कि यह तुम कब तक व्याख्या करोगे? सूर्य उग चुका है और ऊगे हुए सूर्य को

डूबने में देर कितनी लगती है ? एक अर्थ में सूर्य ने डूबना शुरू कर दिया है। जल्दी करो, अर्थ। क्या अर्थ है इसका ? लेकिन पण्डितों ने कहा कि इतनी जल्दी नहीं हो सकता। पहले हम शास्त्रार्थ करेंगे फिर उसका एक-एक अर्थ करेंगे। यह इतना आसान मामला नहीं है। विवाद बढ़ने लगा। दोपहर तक हालतें बहुत बुरी हो गईं। जब सम्राट जगा था नींद से, तो सपना कुछ साफ था। पंडितों की बात सुनकर और Confusion हो गया। कुछ साफ तो न हुआ नया, लेकिन जो साफ था वह भी डावांडोल हो गया। सम्राट ने कहा कि जब मैं जागा था तो मुझे कुछ साफ नजर आता था। तुम्हारी बातें सुनकर मैं और मुश्किल में पड़ गया हूं।

सम्राट के बूढ़े नौकर ने कान में कहा कि सूर्य डूबने के करीब हो गया। दोपहर हो गई। सूर्य उतर रहा है अब। और इनकी बातों का कभी अंत नहीं होगा। क्योंकि पंडितों की बातों का कभी हजारों सालों में अंत नहीं हुआ। अब कैसे होगा ? और यह भी ध्यान रहे कि पंडित कभी भी किसी निष्कर्ष पर, किसी Conclusion पर कभी नहीं पहुंचे। पहुंच भी नहीं सकते। क्योंकि किसी निष्कर्ष पर अनुभव पहुंचता है। यह पंडित कभी न पहुंचेंगे। शाम हो गई तो मुश्किल में पड़ जाओगे। उस बूढ़े ने कहा कि मेरी तो एक सलाह है, अगर मानो तो। और वह सलाह यह है कि तुम्हारे पास एक तेज घोड़ा है। उसे लेकर जितनी शीघ्रता से इस महल को छोड़ सकते हैं, छोड़ दो। इस महल में रुकना ठीक नहीं है, यहीं वह सपना आया, खतरा यहीं हैं कि मौत यहीं आ जाये। सम्राट को बात जची उसने कहा कि कहीं भी भाग जाऊँ इतनी बड़ी पृथ्वी है। उसी जगह थोड़ी पहुंच जाऊंगा जहां कि मौत को मिलना है। और इस मकान को तो छोड़ ही दूं जहां पर सपना आया है। सम्राट घोड़े पर सवार हुआ भागा। उसके पास एक तेज घोड़ा था। उसने कई बार अपनी पत्नि को कहा था कि तेरे बिना एक पल भी न जी सकूंगा। लेकिन घोड़े पर भागते वक्त उसे याद भी न आई पत्नि की। असल में मौत सब भुला देती है, जीवन के सब वायदे मौत भुला देती है। मित्रों से कहा था कि तुम्हीं तो हो सब कुछ। और आज उन मित्रों का कुछ पता न था। मौत करीब आती है तो सब खो जाता है।

सम्राट भागा है घोड़े पर। भागता रहा है, न भूख लगी है उस दिन, न प्यास लगी उस दिन। यह सब जीवन के नखरे हैं। मौत सामने खड़ी हो तो कैसे लगे भूख ? कैसी प्यास ? भागता रहा, भागता रहा, भागता रहा। सोचा, यदि एक क्षण भी रूकूंगा तो उतनी देर मकान से दूर न निकल पाऊँगा। आज न खाऊँगा तो क्या हर्ज है ? शाम तक वह सैकड़ों मील दूर निकल गया। तेज था घोड़ा उसके पास। ऐसे ही एक बगीचे में जाकर आम के पौधे के नीचे जाकर घोड़े को बांधा और रुका। सूर्य डूबता था। घोड़े की पीठ पर थपकी दी और उसने कहा कि शाबास आज तू ही मेरा मित्र सिद्ध हुआ है। मुझे बहुत दूर तू ले आ आया है। थोड़े समय में ही बहुत यात्रा करवा दी। किस मुंह से तुम्हारा धन्यवाद करूँ। तभी पीछे से कंधे पर किसी का हाथ पड़ा। वही काली छाया है। उसने कहा कि घोड़े को धन्यवाद मुझे भी देना है। क्योंकि मैं डरी हुई थी कि सांझ तक तुम इस झाड़ के नीचे आ पाओगे कि नहीं आ पाओगे ? इसी जगह तुम्हें मरना है। घोड़ा तुम्हें ठीक वक्त पर ले आया है। बड़ा तेज घोड़ा है। किस मुंह से इसका धन्यवाद करूँ ?

आदमी जिंदगी भर दौड़ के सिवाय मौत के और कहां पहुंच पाता है ? जिंदगी भर बनाके सिवाय मौत के और क्या बना पाता है ? जिंदगी भर जोड़कर सिवाय कब्र के और क्या जोड़ पाता है ? जिंदगी भर सारा उपाय, अन्तिम निष्कर्ष क्या है ? इसे हम जिंदगी न कहेंगे। धर्म इसे जिंदगी नहीं कहता। धर्म इसे सिर्फ मरने की लम्बी प्रक्रिया कहता है। यह मरने का क्रम है लम्बा। धीरे धीरे सब तत्काल लगता है। मरने में कोई अस्सी साल में मरता है। कोई जरा धीरे मरता है, कोई जरा तेजी से मरता है। मरने की प्रक्रिया पर पूरी हो जाती है। गरीब का घोड़ा भी पहुंच जाता है उसी

झाड़ के नीचे और अमीर का घोड़ा भी पहुंच जाता है। कोई जरा शानदार घोड़े पर जाता है, कोई जरा गरीब घोड़े पर जाता है। कुछ एक पैदल भी जाते हैं। लेकिन कुछ एक तो हवाई जहाजों से भी पहुंच जाते हैं। लेकिन सब अपना दरख्त खोज लेते हैं। और सब ठीक समय पर पहुंच जाते हैं।

आदमी जिंदगी भर चलकर पहुंचता कहां है? धर्म कहता कि जिसे हम जीवन कहते हैं वह जीवन नहीं है। धर्म कहता है जिसे हम जीवन कहते हैं वह केवल जीवन के पैदा होने का एक अवसर है। वह एक Opportunity है। जिसे हम जीवन कहते हैं वह एक बीज है, जिसमें से एक जीवन पैदा हो सकता है। लेकिन हो नहीं गया है। इसे कौन पैदा करेगा? इसे वही बीज पैदा करेगा जो मिटने को तैयार है। लेकिन हम सब बीज तो बचने की कोशिश करते हैं। जिंदगी भर बचते हैं। अन्तिम बार में हमें मौत पकड़ लेती है।

धर्म कहता है कि इससे उल्टा है रास्ता। मिटने की तैयारी जुटाओ, तो तुम्हें मौत कभी न पकड़ सकेगी। अमृत उपलब्ध हो जाएगा। जीवन का वृक्ष इस बीज के बाहर पैदा हो सकता है। इसलिए धर्म का मूल सार में की हत्या है। इससे न कोई हिन्दू का सम्बन्ध है, न इससे कोई मुसलमान का सम्बन्ध है, न बौद्ध का, न सिक्ख का, न जैन का, और न ईसाई का। धर्म का मूल सूत्र अहंकार की मृत्यु है। मैं कैसे मिटूं? मैं कैसे समाप्त हो जाऊँ? मैं कैसे, कैसे अपने को खो दूं? कठिन है यह बात। क्योंकि अपने को खोने से ज्यादा और क्या हो सकती है कठिन बात। लेकिन सरल भी है यह बात। क्योंकि अपने को खोने में इतना आनन्द है, और अपने को बचाने इतना दुख है। इसलिए सरल भी है यह बात।

जीसस को जिस दिन सूली लगी, उस रात खबर हो गई थी कि कल सुबह सूली लग जायेगी। एक मित्र ने जीसस से कहा कि भाग क्यों नहीं जाते हो। जब पता चल गया है कि सुबह सूली लग जायेगी, और दुश्मन खोजता हुआ आ रहा है, तो अभी समय है, भाग क्यों नहीं जाते हो? तो जीसस ने कहा कि यदि सूली न लगे तो उस परमात्मा का द्वार कैसे खुलेगा? सूली लगेगी तभी तो मैं उसे पा सकूंगा। मिटूंगा, तभी तो उसे पा सकूंगा। तो मैं सूली से न भागूंगा। मैं तो सूली की प्रतीक्षा कर रहा हूं। फिर वह सूली पर लटके। उनका जो पादरी है वह गले में सोने की सूली लटकाये फिरता है। बड़े मजे की बात है कि सूलियां सोने की नहीं होतीं। और सूलियों पर गले को लटकाया जाता है, गले में सूलियां नहीं लटकाई जातीं। मगर आदमी बड़ा धोखेबाज है। वह जीसस को धोखा देगा, नानक को धोखा देगा, बुद्ध को धोखा देगा, कृष्ण को धोखा देगा। वह सबको धोखा दे देगा। वह कहता है कि सूली पर लटकना चाहिए। ठीक है, वह सोने की सूली अपने गले में लटका लेगा। यह सोने की सूली सूली नहीं है। यह उसका आभूषण है। वह सोने की सूली पहन कर अकड़ कर चलता है रास्ते पर कि कि वह कोई साधारण आदमी नहीं है। सोने की सूली वाला जीसस का पादरी है। कहां जीसस बेचारा! उसे अपनी लकड़ी की सूली कंधे पर ढोनी पड़ी। अपनी सूली अपने ही कंधे पर ढोनी पड़ती है। उसको गाड़ना पड़ा, और उसको लटका जाना पड़ा। लेकिन मरते वक्त जिसने उसको सूली की आज्ञा दी थी, पाइलट, उस पाइलट ने जीसस से एक सवाल पूछा और वह सवाल शायद मरते वक्त आप भी अपने से पूछेंगे। लेकिन धन्यभागी वे हैं जो मरते वक्त नहीं जिन्दा में ही यह सवाल पूछ लेंगे। क्योंकि फिर काम करने का वक्त नहीं रहता।

पाइलट ने जीसस से मरने से पहले पूछा कि एक सवाल तो बता दो मरने से पहले कि सत्य क्या है? What is truth? जीसस चुप रह गये। उनकी आंखें सूली की ओर उठ गईं। वह पाइलट समझा नहीं तो जीसस ने कहा कि सूली पर लटको तो पता

चले। क्योंकि सत्य पता चलने का कोई और रास्ता नहीं। और रास्ता नहीं सत्य पता चलने का। लेकिन पाइलट नहीं समझा, उसने कहा कि क्या उत्तर नहीं देते हो। मालूम होता है कि तुम्हें मालूम नहीं। असल में, मौन में दिये गए उत्तर को समझने के लिए बड़ी सामर्थ्य चाहिए। जीसस रुके और फिर सूली की तरफ देखने लगे। पाइलट ने कहा कि ठीक है, दे दो सूली। इस आदमी को शायद पता नहीं कि सत्य क्या है?

वे भी कोई वेद शब्द उत्तरार्थ कह सकते थे। वे भी कोई शास्त्र का वचन कह सकते थे कि सत्य क्या है? नहीं। ऐसा नहीं था कि उन्हें पता नहीं था सत्य के सम्बन्ध में क्या-क्या कहा गया है? लेकिन यह कहने का सवाल नहीं, सत्य अनुभव का सवाल है। और अनुभव अपने को दांव पर लगाने से उपलब्ध होता है। उससे पहले उपलब्ध नहीं होता। तो धार्मिक आदमी इस युग में सबसे साहसी आदमी है, उससे बड़ा कोई adventurer नहीं। लेकिन हम तो देखते हैं कि धार्मिक आदमी अत्यन्त कमजोर है। घुटने टेके हुए, हाथ जोड़े हुए, यह धार्मिक आदमी की शक्ल नहीं। यह परमात्मा से कोई काम लेने गया हुआ आदमी है। यह Cunning, चालाक दिमाग, यह कह रहा है कि हमारा कुछ काम निपटा दो जरा। अगर तुम यह काम कर दोगे तो हम पांच आने का नारियल चढ़ा देंगे। यह पागलपन है। भगवान को भी हम रिश्वत देने का इरादा रखते हैं। और अगर हमारे मुल्क में इतनी रिश्वत है तो उसका कारण है कि हम पहले से ही भगवान को रिश्वत देते रहे हैं। हमने सोचा कि आदमी को रिश्वत देने से क्या हर्ज है जब कि हम पहले से ही भगवान को रिश्वत देते आए हैं। पांच आने का नारियल चढ़ा देते हैं तो लाख का काम करवा लेते हैं। तो आदमी को भी पांच आने दे दिए तो हर्ज क्या है? रिश्वत हमारे खून में मिल गई है। भगवान तक को रिश्वत देने में संकोच नहीं किया।

विवेकानन्द की हालत बहुत गरीब थी। विवेकानन्द के पिता मर गए। तो कर्ज छोड़ गए। रामकृष्ण के पास जाते तो अक्सर भूखे ही घूमते रहते। घर में इतनी रोटी होती थी कि या तो माँ खा सके, या विवेकानन्द खा सके। तो मां को कह देते थे कि आज किसी मित्र के घर निमन्त्रण है। तो मां रोटी खा लेती थी। वह सड़कों पर घूम-घूम कर पानी पीकर घर आकर सो जाते थे। रामकृष्ण को पता लगा तो रामकृष्ण ने कहा कि पागल! जब इतनी परेशानी है तो भगवान से क्यों नहीं कह देता? कल आ और मन्दिर में जाकर मां से कह दे, काली से कह दे। कह दे प्रभु से हाथ जोड़कर सब दुःख मिट जाएगा। विवेकानन्द ने कहा आप कहते हैं तो मैं आ जाऊँगा, वह आये। मन्दिर के भीतर गये। रामकृष्ण बाहर बैठे। वे भीतर गये और हाथ जोड़ घण्टे भर खड़े रहे, आंसू बहे। लौट कर आये, रामकृष्ण ने सीढ़ियों पर पूछा, कहा? ..... विवेकानन्द ने कहा अरे, वह तो मैं भूल ही गया। कहा पागल, फिर से जा। वे फिर भीतर गये, फिर हाथ जोड़कर खड़े रहे रोते रहे। फिर घण्टे भर बाद लौटे रामकृष्ण ने पूछा, कहा? ..... विवेकानन्द ने कहा, वह तो मैं भूल ही गया। रामकृष्ण ने कहा तीसरी बार जा। विवेकानन्द ने कहा मैं तीसरी बार भी भूल जाऊँगा। क्योंकि मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि भगवान के पास मांगने जाऊँ तो रोटी मांगने जाऊँ। यह मैं सोच ही नहीं सकता। तो रामकृष्ण ने कहा तो तू करता क्या है वहां जाकर? फिर क्या मांगता है? रोटी नहीं मांगता तो? तो विवेकानन्द ने कहा कि मांगो कुछ भी, मांगना ही फिजूल है। वहां जाके मैं कहता हूं कि मुझे ले लो। मुझे स्वीकार कर लो। मुझे मिटा दो, मुझे संभाल लो। वहां मैं मांगता नहीं, वहां मैं देता हूं। मुझे ले लो किसी तरह। मुझे संभाल लो किसी तरह। मुझे मिटा दो, तुम्हीं ही रह जाओ। तो रोता किसलिए था? उन्होंने पूछा। तो विवेकानन्द ने कहा रोता इसलिये हूं कि शायद यह आवाज पूरी गहराई से नहीं उठती नहीं तो स्वीकार हो जाती। शायद कहीं कोई बचाओ रह जाता होगा इसलिये स्वीकृत नहीं होती। शिकायत यहाँ भी नहीं ..... यही ख्याल है कि कहीं कुछ कमी है नहीं तो स्वीकृत हो जाती।

मिटना होगा, मिटने की प्रार्थना करनी होगी। उसके द्वार पर गिरना होगा, समाप्त होना होगा। इस मैं को बचाना छोड़ें। इस 'मैं' को बचाना छोड़े। इस 'मैं' को मिटाने के ध्यान को ख्याल में लायें तो आपकी जिन्दगी में धर्म का विस्फोट हो सकता है।

तो जब मैं कहता हूं कि यह विस्फोट आपके 'मैं' के मिटने से ही होगा इससे पहले नहीं तो मैं कोई नई बात नहीं कहता। और न मैं कोई पुरानी बात कहता हूं। मैं एक बात कहता हूं जो स्पष्ट है जो सनातन है। सनातन का मतलब पुराना नहीं होता। सनातन का मतलब है जिसका पुराने और नये से कोई अर्थ ही नहीं। पुराने का मतलब है जो कभी था। नये का मतलब है जो कभी नहीं था, सनातन का मतलब है जो सदा से है न नया है न पुराना है। धर्म सनातन है। सनातन धर्म जैसी कोई चीज नहीं, धर्म सनातन है। सनातन धर्म जैसी कोई चीज नहीं। क्योंकि सनातन धर्म का मतलब तो होगा कुछ सामयिक धर्म भी हैं। नहीं, सनातन धर्म जैसी कोई चीज नहीं, धर्म सनातन है। धर्म का होना ही सनातन है, वह सदा है। यह जो सदा, सनातन, एक नियम, एक सूत्र मनुष्य के प्राणों में बैठा है कि अपने को जो मिटाता है वह सब को उपलब्ध हो जाता है यह सनातन है यह कोई नयी बात नहीं है। लेकिन यह बात हर बार नई लगती है। उसका कारण है कि हर बार लोग इसे पुराना कर देने की कोशिश करते हैं। यह हर बार इसलिये नई लगती है कि लोग इसे हर बार पुराना कर देते हैं। इसे पत्थरों पर खोद देते हैं, किताबों में लिख देते हैं। इसलिये लोगों से कहते हैं कि हमारी पुरानी किताब में लिखा हुआ है। उनकी किताब पुरानी होगी यह बात कभी पुरानी नहीं है। यह बात सदा-सदा सनातन है। न पुरानी है न नई है। इस पर धूल नहीं जमती। न यह पुरानी होती है न नई होती है। लेकिन इस बात में जब वे दावा करते हैं कि हमारी किताब में, हमारी किताब पुरानी है तो वे इस बात को भी पुराना करने के लिये व्यर्थ ही मेहनत में पड़ जाते हैं। लेकिन ध्यान रहे जो पुराना हो जाता है वह मर जाता है। और धर्म चूंकि मर नही सकता इसलिये कभी पुराना नहीं हो सकता। जो भी पुराना होगा वह मरेगा। इसलिये धर्म के साथ पुराने का आग्रह मत करें। लेकिन सारी दुनिया के धार्मिक लोग कोशिश यह करते हैं कि उनका धर्म पुराना है। जैसे पुराना होना कोई कीमत है। परमात्मा न पुराना है, न नया है वह सदा वही है। वह कभी पुराना भी नहीं होता नया भी नहीं होता। लेकिन हम शास्त्र निर्मित करके इसे पुराना कर देते हैं। इसलिये जब दोबारा बात आती है तब हमें कठिनाई शुरू हो जाती है कहीं यह कोई नई बात तो नहीं? हम नई से इतना भयभीत होते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। नये से इतना भय क्या? अगर नये से इतना भयभीत हैं तो परमात्मा से बहुत भयभीत हो जायेंगे। क्योंकि परमात्मा जब मिलेगा तो उससे ज्यादा नया क्या है? उससे ज्यादा Fresh क्या है? उससे ज्यादा ताजा क्या है? जब वह मिलेगा तब तो आप बहुत ज्यादा घबरा कर भाग जायेंगे। कहेंगे कि हम तो कोई पुरानी खोल में छिप जाते हैं। यह तो बड़ा नया मालूम पड़ता है। यह तो बिल्कुल नया है। जैसे सुबह की ओस। जैसे सुबह की धूप, यह तो सदा-सदा नया है। यह कभी बासा नहीं होता, इस पर कभी धूल नहीं जमती। लेकिन धर्म तो बासा नहीं होता धर्म ग्रंथ जरूर हो जाते हैं। क्योंकि वह तो आदमी की लिखी हुई किताबें हैं वे तो पुरानी पड़ेगी ही।

मैंने सुना है एक घर में एक आदमी डिक्शनरी बेचने आया। शब्दकोष बेच रहा था। घर की गृहिणी ने उसे टालने को कहा, हमारे पास तो शब्दकोष है, डिक्सनरी है तुम चले जाओ। उसने पूछा कहां है? सामने ही मेज पर एक मोटी किताब पड़ी थी। उसने कहा यह है। उस आदमी ने कहा, माफ कीजिये देवीजी, वह डिक्शनरी नहीं है। उस औरत ने कहा, पागल हो गये हो तुम, यहां से तुम्हें कैसे पता चलेगा? उसने कहा मैं कह सकता हूं कि वह डिक्शनरी नहीं है, वह कोई धर्म ग्रन्थ है। उस स्त्री ने कहा क्या मतलब? तुमने जाना कैसे? वह धर्म ग्रन्थ था। उस आदमी ने कहा

कि जानने का कारण है उस पर इतनी धूल जमी है कि वह डिक्शनरी नहीं हो सकती। डिक्शनरी को तो बच्चे रोज खोलते हैं। वह धर्म ग्रन्थ ही है उस पर धूल जमी है। कौन खोलता है उसे ? घर में रखे हुए हैं और उस पर धूल जमा हो रही है। उस आदमी ने कहा मैं धूल की पर्त देखकर कह सकता हूं कि धर्म ग्रन्थ होना चाहिये। डिक्शनरी तो नहीं हो सकती। धर्म ग्रन्थों पर धूल इकट्ठी हो ही जायेगी।

असल में आदमी कुछ भी बनायेगा वह पुराना होगा। आदमी का बनाया हुआ शास्त्र कभी नया नहीं हो सकता। आदमी की बनाई सब चीज बनती है और मिटती है। आदमी जो भी बनायेगा, बनेगा और मिटेगा, लेकिन कुछ ऐसा भी है जो न कभी बनता है, न मिटता है। सदा है। वह आदमी की बनावट में नहीं, वह आदमी के बनाने के बाहर है। आदमी खुद जहां से बनता है वही है वह जगह जहां शाश्वत सनातन नियम काम करते हैं उन नियमों में मुझे एक सूत्र जो मूल्यवान लगता है वह मैं आपसे कहता हूं।

अगर धार्मिक होना है तो अपने को मिटाने की तैयारी करना। अगर धार्मिक न होना हो तो कम से कम झूठे धार्मिक न होना, सच्चे अधार्मिक होना बेहतर है। उसका कारण है ! ठीक से यह जानना कि मैं धार्मिक नहीं क्योंकि मैं अपने को मिटाने को तैयार नहीं। अगर यह बात आपको ठीक से ख्याल में रहे कि मैं धार्मिक आदमी नहीं क्योंकि अपने को मिटाने की अभी मेरी कोई तैयारी नहीं, तो आज नहीं कल, कल नहीं परसों आपकी जिन्दगी में वह पीड़ा घनी होने लगेगी। अधार्मिक होना आपको दुखद लगने लगेगा। पीड़ा से भर देगा। और एक दिन आपको निर्णय लेना पड़ेगा कि अब मैं धार्मिक होऊं, हमारी तकलीफ क्या है, हमारी तकलीफ यह है कि हम अधार्मिक होते हुए अपने को धार्मिक मान लेते हैं। फिर धार्मिक होने का कोई मौका ही नहीं आता। जैसे कोई बीमार आदमी अपने को स्वस्थ मान ले, बीमार होते हुए तो न वह इलाज करता है न कोई कोशिश करता है स्वस्थ होने के लिये। क्योंकि वह तो स्वस्थ है ही। मनुष्य जीवन में जो सबसे बड़ा दुर्भाग्य हो सकता है वह यह है कि हम अधार्मिक होते हुये अपने को धार्मिक समझे हुए हैं। हमने धार्मिक होने की कैसी सरल तरकीबें निकाली है, एक आदमी रोज सुबह मंदिर हो आता है, या मस्जिद हो आता है, या गुरुद्वारा हो आता है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तो वह अपने को धार्मिक समझने लगता है।

जरा मंदिर से, मस्जिद से निकलते आदमी की अकड देखें वह और ढंग से चलता है। वह दूसरों की ओर देखते हुए चलता है- ठीक नर्क में सड़ोगे। हिसाब रखता है कौन कौन नर्क जायेगा--कौन कौन मंदिर नहीं गया।

मैंने सुना है कि मुहम्मद एक दिन एक लड़के को लेकर मस्जिद चले गये। उस लड़के को उन्होंने कई बार कहा था कि सुबह की नमाज में चल। सुबह की प्रार्थना में सम्मिलित हो, उस लड़के ने कहा मेरी तो नींद ही नही खुलती लेकिन एक दिन मुहम्मद नहीं माने तो वह उठ गया। मुहम्मद लेकर उसे मसजिद गये। सुबह की नमाज में वह लड़का सम्मिलित हुआ। जब वह लौट रहा था तो उस की चाल बदल गई। रास्ते में, गर्मी के दिन थे अभी भी कुछ लोग अपने बिस्तरों पर सोये हुए थे ! उस लड़के ने मुहम्मद से कहा देखते हैं हजरत, यह पापी अभी तक सोये हैं। अच्छा यह बताइये कि नर्क में इनका क्या हशर होगा ? मुहम्मद वहीं रुक गये। उन्होंने कहा कि भाई माफ कर, मुझसे गलती हो गई सुबह जो तुम्हें उठा कर लाया मुझसे बड़ी भूल हो गई, जो तुमसे एक दिन प्रार्थना में खड़े होने को कहा। कल तक तू अच्छा आदमी था कम से कम दूसरों को पापी तो नहीं समझता था। तू वापिस जा, मुझे माफ कर, और मैं वापिस मस्जिद जाऊँ। लड़के ने कहा अब आप किसलिए जाते हैं ; उन्होंने कहा कि मेरी नमाज खराब हो गई। क्योंकि मैंने एक आदमी को खराब किया है।

मुझसे भूल हो गई है फिर से प्रार्थना करूं। एक अच्छा भला आदमी नाहक खराब हो गया। वह दूसरों को पापी समझने लगा।

एक आदमी मंदिर हो आता है वह धार्मिक हो जाता है। एक आदमी सुबह एक माला खरीद लेता है, उसे फेर लेता है और धार्मिक हो जाता है। एक आदमी एक किताब सुबह पढ़ लेता है वह धार्मिक हो जाता है इतना सस्ता धर्म ? अगर इतना सस्ता धर्म होता तो दुनिया में अधर्म की जगह ही क्या थी ? अधर्म बसता कहाँ ? नहीं इतना सस्ता धर्म संभव नहीं। यह अधर्म को बचाने की तरकीबें हैं। यह Safety Measures हैं जिनसे हम अपने अधर्म को बचा लेते हैं। भीतर हम जो हैं, वही रहते हैं, वही रहेंगे ही। अगर एक आदमी दुकान पर जो था मन्दिर में जाकर दूसरा आदमी हो कैसे जायेगा ? वह जो दुकान पर था वही उठकर मन्दिर जाता है और मन्दिर में जो है वही लौटकर दुकान पर जाता है। कोई खेल तो नहीं है जिन्दगी, कि आप मन्दिर के दरवाजे पर गये और तत्काल दूसरे आदमी हो गये। भीतर गये दूसरे आदमी हो गये, बाहर निकले दूसरे आदमी हो गये। दुकान पर बैठे दूसरे आदमी हो गये। जिन्दगी ऐसा खेल नहीं। जिन्दगी एक सातत्य है। जो आदमी दुकान पर बैठा है वही मन्दिर जाता है। और इसलिये इस बात की संभावना बहुत कम है कि दुकान पर बैठा हुआ आदमी अगर गलत था तो वह मंदिर में जाकर ठीक हो जाये। इसकी सम्भावना ज्यादा है कि वह दुकान पर बैठा गलत आदमी मन्दिर में जाये तो मन्दिर भी गलत हो जाये। यह संभावना ज्यादा है और मन्दिरों को इन्होंने गलत कर दिया है। सब तरह के अधार्मिक लोगों ने मन्दिरों में इकट्ठे होकर मन्दिरों को गलत कर दिया है। वहाँ कोई धर्म की संभावना नहीं रह गई। स्वभावतः आदमी इतनी आसानी से नहीं बदल जाता है।

एक छोटी सी कहानी और मैं अपनी बात पूरी करूंगा। मैंने सुना है कि एक आदमी मरण शय्या पर पड़ा है, मर रहा है। उसकी पत्नी उसके पास बैठी है माथे पर हाथ रखे। डर रही है, रो रही है। सारे घर के लोग इकट्ठे हुये हैं। अंधेरा हो गया है दिया भी नहीं जला है। अचानक उस आदमी ने पूछा मेरा बड़ा लड़का कहाँ है ? उसकी पत्नी ने कहा आपके पास बैठा है लेकिन उसकी बहुत हैरानी हुई क्योंकि यह जिन्दगी में पहला मौका है कि उसने पूछा है कि मेरा बड़ा बेटा कहाँ है ? वह सब पूछता था कि तिजोड़ी की चाबी कहाँ है ? खाते बही कहां हैं ? यह उसने कभी नहीं पूछा कि मेरा बेटा कहाँ है ? असल में, जो पैसे के लिये पागल है उसकी जिन्दगी में प्रेम की तलाश कहां होगी ? वह बहुत खुश हुई। मौत की छाया में भी उसे आनन्द की झलक दिखी उसने कहा कोई बात नहीं, आज तो इतने प्रेम से पूछा, उस आदमी ने कहा और उससे छोटा कहाँ है ? उसने कहा वह भी बैठा हुआ है। उसने कहा उससे छोटा कहाँ है ? वो बोली वह भी बैठा हुआ है। वह आदमी हाथ टेक कर उठने लगा। उन्होंने कहा आप लेटे रहें हम सब यहां हैं, सब से छोटा भी यहाँ है। उस आदमी ने कहा फिर इसका क्या मतलब, दुकान पर फिर कौन बैठा है ? सभी यहां बैठे हुए हैं ? वह स्त्री गलत समझ रही थी, वह आदमी वहीं है। वह अभी भी बेटे को नहीं पूछ रहा है अभी भी पूछ रहा है कि तिजोड़ी की चाबी कहाँ है ? अभी भी दुकान पर कौन है ? मरते वक्त भी यही पूछ रहा है। उसे इसकी फिकर नहीं, मैं मर रहा हूं। उसे इसकी फिकर है कि दुकान चल रही कि नहीं चल रही ?

असल में जिन्दगी एक Continuity है। अगर कल तक वह दुकान की पूछ रहा था तो अब वह अचानक प्रेम की कैसे पूछ लेगा। यह अचानक नहीं नहीं हो सकता। छलांग लगानी पड़े Jump लेना पड़े, तो Continuity टूटती है। इसलिए ध्यान रखना आप ऐसा मत सोचना कि जिन्दगी जैसी चलती है चलती रहे, कभी थोड़ा धार्मिक काम कर देना, कभी कुछ दान दे देना, कभी एक मंदिर में कमरा बनवाकर पत्थर लगवा दो, कभी तीर्थ हो आओ, कभी मंदिर हो आओ, कभी कुरान पढ़ लो, कभी गीता पढ़ लो, कभी गुरुग्रन्थ को नमस्कार कर दो। यह अपने को धोखा मत दे

देना । इस भांति धार्मिक न हो सकोगे । धर्म मांगता है कि आओ तो पूरे आओ वह Total मांगता है । असल में कोई प्रेम अधूरा नहीं मांगता । वह कहता है कि पूरे आओ और धर्म भी मांगता है कि पूरे आओ । पूरी जिन्दगी बदलने की तैयारी, लेकिन वह कहां से होगी ? उसका सूत्र है कि यदि "मैं" टूट जाता है तो पूरी जिन्दगी तत्काल बदल जाती है । यह जो हमारी जिन्दगी है "मैं" के आसपास खड़ी रहती है "मैं" का केन्द्र है वह टूट जाये, तो यह जिन्दगी बिखर जाती है, जैसे कोई भी केन्द्र टूट जाते हैं तो सब बिखर जाता है । जैसे साइकिल पर एक्सल लगा होता है बीच में, सब स्पोक केन्द्र से जुड़े हैं, वह केन्द्र टूट जाये सब स्पोक बिखर जाते हैं । यह हमारी जिन्दगी का केन्द्र अहंकार है और उस जिन्दगी का केन्द्र निरहंकार है । धार्मिक जिन्दगी का केन्द्र निरहंकार है Non-Ego वहां नहीं रह जाये 'मैं' तो वहां सब बदल जाये । लेकिन हम २४ घंटे मैं, मैं, मैं, से ही भरे हुए हैं । हमारी स्वांस स्वांस में 'मैं', रोये रोये में 'मैं' सोते जागते, उठते बैठते, हिलने डुलने, में 'मैं' हमारा सारा व्यक्तित्व 'मैं' है । इसलिए इस 'मैं' में आप धर्म को Addition नहीं बना सकते । आप सोचते हों यही "मैं" माला फेरने लगे तो काम हो जाये, यही मैं ग्रन्थ पढ़ने लगे तो काम हो जाये, यही 'मैं' त्याग करने लग जाये तो काम हो जाये यह काम तब होगा जब 'मैं' टूटे ।

यह मैं टूट सकता है । इस 'मैं' के टूटने के सिवाय आपका और कोई बाधा नहीं । यह 'मैं' तत्काल टूट सकता है, एक बार इतना स्मरण आ जाये यह 'मैं' है भी ? जिस 'मैं' के लिए मैं जी रहा हूं, मर रहा हूं, यह कहीं है ?——सच में इसकी कोई सच्चाई है ?——इसका कोई अस्तित्व है ?——अगर यह पता चल जाये तो यह तत्काल टूट सकता है ।

सुना है मैंने कि एक महल के पास पत्थर का एक ढेर लगा पड़ा है ! छोटा सा बच्चा निकला है और उसने एक पत्थर महल की ओर फेंक दिया । जब वह पत्थर महल की ओर उठने लगा तो उसने नीचे पड़े हुए दूसरे पत्थरों से कहा सुनो मित्रो मैं जरा आकाश की यात्रा पर जाता हूं । फेंका गया था लेकिन वहां उसने कि जा रहा हूं, फर्क कर लिया है । फर्क समझ लेना ठीक से । धार्मिक और अधार्मिक जिन्दगी का यही फर्क है—फेंके गये हैं जिन्दगी में हम और कहते हैं मेरा जन्म, जिन्दगी में आया हूं—उस पत्थर ने कहा कि मैं जा रहा हूं आकाश की सैर को । नीचे के पत्थर तो कुनकुनाये होंगे । ईर्ष्या से भर गये होंगे लेकिन क्या कर सकते थे । सोचा होगा मन में भाग्यशाली है जो जा रहा है । जाना तो हम भी चाहते हैं लेकिन पंख कहां ? शक्ति कहां ? भगवान की कृपा है इस लिये जा रहा है । गया है पत्थर, जा कर टकराया है कांच की खिड़की से महल की । स्वभावतः जब कांच से पत्थर टकराये तो कांच टूट जाता है । पत्थर चूर चूर करता नहीं है । पत्थर को कुछ करना नहीं होता कांच से टकरा के, वह कांच के टकराने में कांच और पत्थर का स्वभाव ऐसा है कि कांच चूर चूर हो जाता है । लेकिन जब कांच चूर चूर हो गया तो पत्थर ने कहा नासमझ कांच, कितनी दफे मैंने खबर की, कितनी बार मैंने समझाया कि मेरे रास्ते में मत आओ मैं चकना चूर कर देता हूं । किया नहीं था कुछ, हो गई थी घटना It was just happening इसमें Doing कुछ भी नहीं थी, कि उसने कुछ किया हो, कि पत्थर को कुछ करना पड़ा हो इतजाम कांच को चकना चूर करने में, पत्थर और कांच का स्वभाव ऐसा है कि पत्थर और कांच टकराये तो कांच चकना चूर हो जाता है । लेकिन कांच के टकड़े क्या कह सकते थे हारे टूटे पराजित पड़े । उन्होंने कहा ठीक ही कहते हो भूल हो गई आगे से रखेंगे । पत्थर और अकड़ गया । गिरा नीचे, कालीन बिछा था महल में, ईरानी बहुमूल्य कालीन । पत्थर ने अपने मन में कहा बड़े भले लोग मालूम होते हैं मेरे आने की खबर पता चल गई । कालीन वगैरा सब बिछा कर रखे हुए हैं । विश्राम कर लूं थोड़ा । तभी नौकर भागा हुआ कांच के टूट जाने की आवाज सुनकर आया, पत्थर को हाथ में उठाया

पत्थर ने कहा धन्यवाद, सोचा पत्थर ने कि भवन का मालिक हाथ मे उठा कर स्वागत करता है । लेकिन नौकर तो पत्थर की आवाज न समझा । बात न समझा । नौकर ने तो पत्थर को वापिस फेंक दिया । जब पत्थर वापिस खिड़की से फेंका गया तो उसने कहा कि चलें कितने भी अच्छे हैं तुम्हारे महल, लेकिन वह मजा कहां जो खुले आकाश के नीचे दूसरे पत्थरों के साथ रहकर आता है । और फिर इस पत्थर ने कहा कि Home Sickness भी मालूम पड़ती है । घर की याद भी बहुत आती है । वापिस अपने पत्थरों की ढेरी पर गिरा। पत्थरों से उसने कहा बड़ी यात्रायें की महलों की, महलों में निवास किया, राजाओं के हाथों स्वागत पाया । कालीनों पर विश्राम किया । शत्रुओं का विनाश किया लेकिन फिर भी मन हुआ कि लौट चलें । मैं वापिस आ गया हूं ।

उस पत्थर पर जरुर आपको हँसी आयेगी । लेकिन अगर किसी तरह अपने पर इसी तरह हँसी आ जाये तो आपकी जिन्दगी में धर्म की शुरूआत हो जाती है । गौर से समझ लेना उस पत्थर से हम भिन्न नहीं हैं । जहां चीजें हो रही हैं वहां हम कह रहे हैं कि हम कर रहे हैं । जहां जिन्दगी अपने से हो रही है वहां हम कर्त्ता बने हुये हैं । वह कर्त्तापन ही हमारा 'मैं' बन गया है । और वह 'मैं' ही हमारे और परमात्मा के बीच दीवार है । इसके खोने को तैयार हों और परमात्मा आपसे सदा मिलने को तैयार है । आप उस तक छलांग लगायें 'मैं' के बाहर वह सदा मौजूद है ।

धर्म प्रभु की खोज है । धर्म 'मैं' का खोना होता है । धर्म बीज का मिटना है, वृक्ष का होना है । धर्म बूंद का मिटना है सागर का होना है । फिर आपके हाथ में है कि बूंद ही रहना चाहें तो बूंद ही रह जायें सागर होना चाहें सागर हो जायें । लेकिन एक कृपा अपने पर करें कि बूंद रहते हुये अपने को सागर समझने की भूल न करें, तो किसी न किसी दिन बूंद तड़फ उठेगी, प्यासी हो जायेगी, प्रार्थना से भर जायेगी और सागर की यात्रा पर निकल जायेगी । जिस दिन भी सागर की यात्रा पर निकलना हो, चारों तरफ गौर से देख लेना, कोई खूंटी नाव की बंधी हो तो नहीं रह गई ? कोई हिन्दू की खूंटी, मुसलमान की, सिख की, जैन की, ईसाई की, कोई भारती की, चीनी की, पाकिस्तानी की, अमरीकी की, कोई खूंटी तो बंधी नहीं रह गई । काले की, गोरे की, अमीर की, गरीब की, स्त्री की, पुरुष की, कोई खूंटी बंधी तो नहीं रह गई ? खूंटी को ठीक से देख लेना, नाव में पतवार बाद में चलाना, पहले खूंटी उखाड़ देना, जंजीर तोड़ देना । और Unknown उस अज्ञात की यात्रा पर, अगर आप खूंटियां छोड़ दें तो रामकृष्ण के एक वचन से अपनी बात पूरी करता हूं । रामकृष्ण कहते थे तुम नाव तो खोलो, उसकी हवायें ले जाने को सदा तैयार हैं । नाव बंधी पड़ी है किनारे से, कब तक इस नाव को किनारे पर बाँधे रखियेगा ? कब तक ? कब तक इस दीवाल को बनाये रखना है ? इस प्रश्न के साथ ही मैं अपनी बात पूरी करता हूं । मेरी बातें इन चार दिनों में इतने प्रेम और शांति से सुनीं उससे बहुत अनुग्रहीत हूं, अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें ।

●●●

मेरी संन्यास यात्रा

—स्वामी अगेह भारती, (शिव) जबलपुर

आचार्य श्री के साक्ष्य में संन्यास लेकर पूना से वापस लौटा तो यहां मित्रों ने कहा कि अब अगेह भारती की संन्यास यात्रा पढ़ने को मिलेगी । कुछ ने कई बार पूछा भी : क्यों जी, लिखे नही अभी आप ?

यह तो मैं भलि भांति जानता हूं कि अब लिखने में मेरी उत्सुकता नहीं रही पर धीरे धीरे यह भी मेरी समझ में आया कि एक बार लिखे बिना भी बचना मुश्किल है । और अब तो बाहर के मित्रों के भी पत्र आने लगे हैं कि शीघ्र ही उन्हें मेरी संन्यास यात्रा पढ़ने को मिलेगी । आखिर आज हिम्मत करके कलम उठा ही लिया हूं । अस्तु:

पहली बात तो यह है कि मेरे संन्यास की कोई यात्रा है, ऐसा मुझे नही लगता। मुझे तो लगता है संन्यास 'यात्रा' नहीं एक 'पड़ाव' है, समस्त यात्राओं से मुक्ति और 'विश्राम' है । अत: मैं संन्यास यात्रा लिखने में सर्वथा असमर्थ हूं । हां, मेरे बदले हुए वस्त्र, गले में डली माला व निरन्तर बढ़ती चली आती दाढ़ी आदि को लेकर कई बार कई मित्र विचित्र से प्रश्न पूछते हैं, संभव है उन्हें अपने प्रश्न स्वाभाविक लगते हों और तब तो मेरा उत्तर ही उन्हें विचित्र लगता होगा। जो भी हो, उन बातों का एक खास मजा यह है कि वे बेमतलब की [Meaning Less] हैं । और संन्यास लेने के बाद मुझे वे बातें बहुत आनन्दपूर्ण लगती हैं जिनका कोई अर्थ नहीं होता । वैसे कई आचार्य प्रेमियों को मतलब की बातें करने का नशा है । उनसे मिलने पर जी घबरा उठता है कि कैसे बचूं इनसे । खैर तो उन बेमतलब की बातों का मजा आप ले पायेंगे, इसी आशा से उन्हें लिख रहा हूं । वैसे, संन्यास के बाद निरन्तर सिर में अमृत बरसने जैसा बोध होता रहता है । और भी ऐसी कई बातें हो जाती हैं लेकिन वे सब मतलब वाली Meaningful बातें होती हैं । और अब मुझे मतलब वाली बातों से ज्यादा बेमतलब व फजूल अन्य कुछ भी नहीं लगता । अस्तु:

कभी कभी अगेह भारती भी सोचता है आचार्य जी ने कैसा संन्यास दिया कि कोई नमस्कार तक नहीं करता । हां, कई परिचित मित्रों के पूछने पर वह बताता है कि संन्यास लिया है तो क्षण भर को उनकी आंखों में सहज श्रद्धा के और प्रशंसा के भाव जरूर उमड़ आते हैं । पर उनका अगला प्रश्न होता है और नौकरी ? अगेह भारती कहता है नौकरी चल रही है । वे पूछते हैं बीबी बच्चे ? अ० भा० कहता है : वे सब हैं । और बस आंखों की वह श्रद्धा जाने कहां गायब हो जाती है । लगता है मानो कह रहे हों यह कैसा संन्यास मिस्टर, तुम्हारा दिमाग तो ठीक है न ? और कई ऐसा कह भी देते हैं । हां, अकेले निकलने पर कभी कोई आदिवासी टाइप का बेचारा आदमी नमस्कार कर भी लेता है पर मां योग सम्बोधि जब बगल में होती है तब तो वह भी अचरज व तमाशाई निगाह से देखता है । पढ़े लिखे लोग ज्यादा हिम्मत वर हैं । वे रिमार्कस देते हैं । 'हरे रामा' 'हरे कृष्णा' आदि की बोलियां बोलते हैं । मैं मन ही मन मुसकराता हूं और रजनीश को धन्यवाद देता हूं ।

× × ×

कई बार लोग ऐसी निगाह से देखते हैं मानो कह रहे हों कि देखो यह ढोंगी संन्यासी इस स्त्री को फँसाये जा

रहा है। मैं मन ही मन हँसता हूं। हृदय की करुणा रोती भी है कि दुनिया कितनी अंधी है, जब शिव गैर स्त्रियों व लड़कियों के साथ घूमता व आवारा गर्दी किया करता था तब दुनिया उसे इज्जतदार समझती थी। कमीज पेन्ट व टाई पर गैर लड़की साथ हो तो पुलिस वाला निगाह उठाकर देखने की हिम्मत भी नहीं करता था। और आज जब पत्नि भी मित्र और मां हो गई है उसके साथ घूमने में पुलिस वाला भी बड़ा जासूसी निगाह से देखता है।

× × ×

एक दिन अगेह भारती से उनके एक परिचित मित्र ने पूछा कि क्या नियम है आपके रहन सहन का?

अगेह भारती : जैसा जिस क्षण मैं चाहता हूं वैसा उस क्षण रहता व जीता हूं, बस यही मेरा नियम है।

मित्र : यह तो कोई नियम न हुआ।

अ० भा० : आप ठीक ही कहते हैं।

मित्र : फिर यह कैसा संन्यास है?

अ० भा० : यह संन्यास उन लोगों के लिए है जो इतने जिन्दा हैं कि नियमों से अपने को ज्यादा बड़ा मानते हैं। जो अपने को इतना प्रेम करते हैं कि बीच में किसी नियम को नहीं स्वीकार कर पाते। जिनका अन्तःकरण किन्हीं नियमों में बंधने को राजी नहीं है। उनके लिए उनका विवेक ही नियम है।

मित्र : इस तरह लोग आपको क्या कहेंगे? समाज क्या कहेगा?

अ० भा० : समाज की फिक्र छूट गई कि वह क्या समझेगा क्या कहेगा तब संन्यास लिया है।

मित्र : आप आखिर चाहते क्या हैं संन्यास लेकर?

अ० भा० : संन्यास लेने के पूर्व तो बहुत कुछ चाहता था। अब तो कुछ भी नहीं चाहता हूं।

मित्र : आखिर कुछ तो लक्ष्य होगा।

अ० भा० : लक्ष्य हीन जीवन जीना ही लक्ष्य है।

मित्र : लगता है आप पागल हो गये हैं।

अ० भा० : पागल हो गया होता तो आप शायद ही पास फटकने की हिम्मत करते।

× × ×

एक मित्र : यह वस्त्र महंगे मालूम पड़ते हैं।

अ० भा० : जी हां, टेरीकाट है।

एक मित्र : फिर कैसा संन्यास है?

अ० भा० : अगर चीथड़े पहनने से संन्यास आता होता तब तो बड़ी आसान बात थी।

× × ×

एक ईसाई मित्र : कंठी माला पहनने से क्या होता है?

अ० भा० : मित्र, क्रास लटकाने से क्या होता है?

एक अन्य मित्र : कपड़े रंगने से क्या होता है।

अ० भा० : क्या होता है, इसे बताने से कुछ नहीं होगा। कपड़े रंगें और खुद देखें।

× × ×

एक रजनीश विरोधी पत्रकार—अगेह भारती की दाढ़ी को लक्ष्य करके : क्या रजनीश की नकल हो रही है।

अ० भा० : जी हां। क्योंकि अगर दाढ़ी बनवाऊं तो तुम्हारा नकल होगी। और मैं तुम्हें इस लायक नहीं समझता कि तुम्हारी नकल करूं।

× × ×

एक दिन एक मित्र सड़क पर मिल गए। उन्हें आचार्य श्री की सारी बातें सदा ठीक लगती थीं, पर अब संन्यास की बात उन्हें नहीं जचती। वे आजकल अक्सर इस बात को लेकर बहसे व बड़ा तर्क-कुतर्क करते रहते हैं। एक बार अगेह भारती को उनसे यह भी कहना पड़ा कि जितना आपको जंचता है उतना ही आचार्य जी को भी जंचता होता तब तो आप में व उनमें कोई फर्क न होता। पर आप स्वयं जानते हैं कि आप में व उनमें बहुत फर्क है। फिर, आपको अगर पक्का भरोसा है कि संन्यास न लेकर आपने ठीक किया है तो संन्यासियों से छेड़-छाड़ क्यों करते है? संन्यासी तो आपको नहीं कहता कि आप सन्यास ले लें? खैर—

तो सडक पर उस दिन जब भेंट हुई तो उन्होंने पूछा : कहां से आ रहे हो?

अगेह भारती उस क्षण इतने मौज में था कि यद्यपि वह एक विवाहोत्सव अटेण्ड करके आ रहा था तथापि मुस्कुराते हुए उसने कहा : "खेल देखकर आ रहा हूं।"

वे मित्र बोले : आचार्य जी ने ही कहा है कि जो खेल-तमाशे व पिक्चर देखता है, इस बात का सबूत है कि वह शांत नहीं है।

अगेह भारती : मैंने यह कब कहा कि मैं शांत हूं। असल में, हूं अशांत इसलिए ही संन्यास लिया है।

× × ×

एक दिन रजनीश विरोधी एक पंडित ने कहा : कुछ मुझे भी बताएं कभी ?

अगेह भारती : कुछ तो जानते ही होंगे ?

पंडित जी : वैसे तो खैर बहुत कुछ जानता हूं, पर आपकी भी सुनूं, आपने संन्यास लिया है ?

अगेह भारती : मित्र, मैं तो अब यही जानता हूं कि मैं कुछ नहीं जानता।

× × ×

एक दूसरे पंडित : कुछ मुझे भी बतायें कभी ?

अगेह भारती : क्या बताऊं ?

पंडित जी : कुछ भी बतायें, मैं कुछ नहीं जानता।

अगेह भारती : इससे ज्यादा दूसरा क्या बता सकता है ?

× × ×

पचीसों परिचित मित्रों ने अगेह भारती को एक ही बात कही कि भीतर से मन रंगना चाहिए। बाहर कपड़े रंगने से क्या होता है ? अगेह भारती किसी को कहे देता : क्या होता है, कपड़े रंग कर देखें। किसी को कहता आप ठीक कहते हैं, आपकी बात पर विचार करूंगा। लेकिन एक दिन एक मित्र का बहुत गहरा असर हुआ जब उन्होंने वही बात कही और अगेह भारती ने कहा : ऐसा लगता है आप सब लोग भीतर से बदलने में ही संलग्न हैं।

बाद में एक अन्य मित्र ने यही बात कही तो अगेह भारती ने कहा : आप सब भीतर से बदलें मैं बाहर से बदला हूं, आप क्यों चिन्तित होते ?

× × ×

एक नजदीकी हिन्दू दोस्त : यह क्या किया ?

अ० भा० : मैंने नहीं, सब कृष्ण ने किया है।

दोस्त : (हैरानी के साथ) : कृष्ण ?

अ० भा० : हां, वे पृथ्वी पर प्रगट हुए हैं, तुम्हें पता नहीं ?

दोस्त : कहां है वह ?

अ० भा० : रजनीश नाम से बम्बई में।

दोस्त : तुम कैसे पागलों जैसी बातें कर रहे हो ?

अ० भा० : तुम कैसे अभागे गधे हो कि समझते ही नहीं।

× × ×

एक विभागीय अधिकारी : क्यों जी, तुम भी उसपार्टी के मेम्बर हो गये क्या ?

अ० भा० : किस पार्टी के ?

अधिकारी : वहां 'हरे रामा' 'हरे कृष्णा' ?

(तीन चार अन्य अधिकारी भी पास आ गये हैं)

अ० भा० : उस पार्टी का मेम्बर कौन नहीं है ?

अधिकारी : वह तो ठीक है। मेरा वैसा मतलब था।

अ० भा० : वैसा मतलब था तो मैं उस पार्टी का मेम्बर नहीं हूं।

अधिकारी : फिर यह क्या है ?

अ० भा० : आचार्य श्री रजनीश का नाम सुना है ?

अधिकारी : Yes, Yes, I know him very well. (हां, हां, मैं उन्हें भली भांति जानता हूं)

अ० भा० : उन्हीं के 'गाइडेन्स' में संन्यास लिया है।

अधिकारी : अच्छा, अच्छा। लेकिन क्षमा करें, एक बात कहना चाहूंगा, यह माला ऊपर क्यों रखते हो ?

अ० भा० : क्योंकि ऊपर रखना मुझे पसंद है।

अधिकारी : भई, माला नीचे रखी जाती है।

अ० भा० : ऐसा रूढ़ि ग्रस्त चित्त ही सोचता है। अगर दुनिया अभी तक माला ऊपर रखती होती

और आज मैं नीचे रखता तो आप ही आज यह पूछते कि माला नीचे क्यों ?

अधिकारी : भाई, माला एक ऐसी बात है, देखो लोग माला जपते हैं तो माला को चादर या टावल अंगोछे के नीचे छुपाकर जपते हैं।

अ० भा० : छुपाकर जपते हैं और फिर भी आप को यह दिख जाता है कि माला जपी जा रही है, न ? (सभी हंसते हैं)

अधिकारी : अच्छा बाबा, ये कपड़े बदलने से क्या लाभ ?

अ० भा० : कपड़े बदलने से कई लाभ हैं जो उन्हीं पर प्रगट होता है जो बदलते हैं। वैसे एक लाभ यह भी है कि लाभ हानि की अब चिन्ता नहीं होती। बस तबियत में एक मौज है, आनंद है, मन में शांति है। भीतर कहीं प्रार्थना व अनुग्रह का बोध है। इस सबको छोड़कर लाभ-हानि तक ख्याल जाय, इतना अवकाश नहीं।

× × ×

एक साथी : माला ऊपर पहनते हो, दूसरों को दिखाने के लिए।

अ० भा० : मैं माला को ऊपर पहनता हूं पर किसी को दिखाता नहीं, हो सकता है आप उसे देखते हों। न चाहें, तो कृपया उसे न देखें।

एक अन्य साथी : माला ऊपर क्यों रखते हैं।

अगेह भारती : शुरू में तो शायद ऊपर-नीचे का खयाल भी न था। माला अपने आप ही ऊपर रही। और नीचे करलूं तो दूसरे मित्र पूछते हैं भाई माला कहाँ गई, उतार दिया क्या ? तो इन व्यर्थ के प्रश्नोत्तरों से बचने के लिए माला ऊपर ही रखता हूं।

साथी : मैं आपको सदा से बहुत आदर करता हूं पर यह निवेदन है मेरा कि माला नीचे रखें।

अगेह भारती : माला तो अब मैं ऊपर ही रखना चाहता हूं पर मैं भी आपको आदर करता हूं अतः आपका निवेदन टालूंगा नहीं। यह देखिये आपके सामने माला नीचे कर लेता हूं।

[संयोग की बात, ठीक उसी क्षण एक तीसरे मित्र पहुंचते हैं और पूछते है माला कहां गई ? दूसरे मित्र बहुत हंसते हैं अगेह भारती से लगभग लिपट जाते हैं और अगेह भारती भी मुंह से कुछ कहने के बजाय मुसकाते हुए माला को ऊपर कर लेते हैं और फिर ऊपर ही रहने देते हैं।]

एक अन्य मित्र : माला ऊपर क्यों पहनते हैं ?

अ० भा० : इस माला द्वारा लोगों को खबर देता हूं।

मित्र : किस बात की खबर ?

अ० भा० : उसे शब्दों में बताया जा सकता, तो माला ही क्यों पहनता ?

× × ×

एक विद्वान पंडित जी : आपको गायत्री आती है ?

अगेह भारती : नहीं।

पंडित जी : वेद उपनिषद् का अध्ययन किया है कभी ?

अ० भा० : नहीं।

पंडित जी : फिर कैसे संन्यासी हो ?

अ० भा० : पंडित महाराज जी, मैं ज्ञानी नहीं, अज्ञानी संन्यासी हूं।

× × ×

एक दिन नगर की एक चौड़ी सड़क पर अगेह भारती मौज में झूमता चला जा रहा था। सहसा उसने देखा कि विरोधी दिशा से आता हुआ एक वृद्ध झपटकर उसके चरणों पर गिर पड़ा। उसने असीम प्रेम व करुणा से भरकर उन्हें उठाया।

वृद्ध ने पूछा : स्वामी जी आप कहां से आये है ?

अ० भा० : मैं यहीं अपर लाइन्स पर रहता हूं।

वृद्ध : किसके यहां ?

अ० भा० : मैं नौकरी करता हूं और रेलवे क्वार्टर में रहता हूं।

वृद्ध : आपका कौनसा चोला है ?

अ० भा० : इसकी ही खोज में हूं।

वृद्ध : नहीं, मेरा मतलब आप की जात क्या है ?

अ० भा० : मेरी जाति है संन्यासी, मेरी जाति है आदमी।

वृद्ध : मैं तो आपको इस बाने में देखकर श्रद्धावश पैरों पर गिर पड़ा।

अ० भा० : ठीक है, ठीक है। आप घबड़ायें नहीं आपने कुछ गड़बड़ नहीं किया।

वे वृद्ध सज्जन हालांकि जाते समय भी पैर छूकर गए परन्तु घर आने को कह गए थे सो आज तक नहीं आए। । अगेह भारती सोचता है थोड़ा चूक हो गई उस दिन। उसे छोटा सा उत्तर देना था कि शिव के यहाँ रहता हूं। नौकरी चाकरी का अरने आप जिक्र ही नहीं करना था। कम से कम वृद्ध बेचारा कुछ देर, कुछ दिन तो श्रद्धा की स्थिति में रहता। फिर जिस दिन घर आता उस दिन तो राज खुलता ही। खैर अब तो जो हुआ सा हुआ।

× × ×

हो सकता है कई बुद्धिमान मित्र बोर हो रहे हों क्योंकि बेमतलब की बातों से क्या फायदा ? उनका बोर होना भी उचित है और मेरा बेमतलब का बक बक करना भी मतलब का है। खैर एक अंतिम बात और अपनी चर्चा मैं पूरी करता हूं।

ऐसे भी लोग अ० भा० को मिले हैं जो उसके संन्यास से प्रसन्न हुए हैं, गद्‌गद् हुए हैं, आशीर्वाद दिए हैं। और खुद भी संन्यास में उत्सुक हुए हैं। अ० भा० के माता पिता ने भी अपनी खुशी व आशीर्वाद प्रगट किया है। आपने मेरी अर्थहीन बकवासों को इतने प्रेम से सुना, इससे बहुत बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे रजनीश को प्रणाम करता हूं मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

●●●

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में

आचार्य श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति शिखा

संपादक—श्री महीपाल **मूल्य ५) वार्षिक**

[आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये या आप चाहें तो उपहार में भेंट करें]

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग,

डा० डी० एन० रोड, बम्बई—१

Phone : 264530

जो न देखा, न सुना

(बड़ौदा में आचार्य श्री द्वारा दिया गया एक प्रश्नोत्तर प्रवचन)

प्रस्तुतकर्त्ता : श्री चन्द्रकांत पटेल, आसोपालव, बड़ौदा संकलन : श्री नंदकिशोर, रावपुरा, बड़ौदा ।

मेरे प्रिय आत्मन्

एक मित्र ने पूछा है कि, क्या मनुष्य की श्रद्धा को तर्क से ललकारा जा सकता है ?

श्रद्धा को तो किसी से भी नहीं ललकारा जा सकता, लेकिन हम जिसे श्रद्धा कहते हैं, वह श्रद्धा होती ही नहीं । होता है सिर्फ विश्वास, और विश्वास को तो किसी से भी ललकारा जा सकता है । श्रद्धा और विश्वास के थोड़े से भेद को समझ लेना जरूरी है ।

विश्वास है अज्ञान की घटना, जो नहीं जानते उसकी मानता का नाम है विश्वास, श्रद्धा है ज्ञान की चरम परिणति, जो जानते हैं उनके जानने में श्रद्धा है । उसे किसी भांति नहीं ललकारा जा सकता । लेकिन जिसे हम श्रद्धा कहते हैं वह श्रद्धा नहीं है । वह सिर्फ विश्वास है "बिलीफ" और ध्यान रहे जो विश्वास करता है वह श्रद्धा तक कभी भी नहीं पहुंच सकता है, और श्रद्धा तक पहुंचना है तो ध्यान रहे विश्वास नहीं संदेह का सहारा लेना जरूरी है । श्रद्धा तक पहुंचना हो तो कुछ मान लेने की बजाय उसे खोजना जरूरी है । हम सारे इतने कमजोर लोग हैं कि बिना खोजे मान लेते हैं । यह बिना खोजे जो मान रखा है, उसे तो किसी से भी तोड़ा जा सकता है । असल में उसे तोड़ने की जरूरत ही नहीं है, वह टूटा हुआ है । यह हम भी अपने भीतर जानते हैं, कि हमारे विश्वास के नीचे कोई बुनियाद नहीं है । कोई आधार नहीं है । इसीलिये विश्वास से भरा हुआ आदमी सदा भयभीत रहता है । वह जो, जिन मित्रों ने पूछा है, वे भी विश्वास से भरे हैं, इसीलिये उन्हें भी भय है कि कहीं तर्क से उनका विश्वास ललकारा न जाय । तर्क ललकारेगा, तर्क बहुत कीमती है, और जिन्हें श्रद्धा तक पहुंचना है, उन्हें तर्क के मार्गों से गुजरना ही पड़ता है । असल में श्रद्धा तब आती है, जब सब तर्क हारकर गिर जाते हैं, और तब विश्वास आता है जब तर्क किया ही नहीं हो । जिसने तर्क किया ही नहीं वह विश्वासी होता है, और जिसने सब तर्क किये, और पाया कि सब तर्क गिर गये, वह श्रद्धा को उपलब्ध होता है । श्रद्धा तर्कों की मृत्यु पर खड़ी होती है, और विश्वास तर्कों की आड़ में छिपकर खड़े होते हैं । विश्वास अंधेरे की चीजें हैं, श्रद्धा पूर्ण प्रकाश की घटना है ।

लेकिन श्रद्धा को हम विश्वास समझकर बड़ी आसानी से जी लेते हैं । ईश्वर का हमें कोई पता नहीं, लेकिन हम मानते हैं ईश्वर है, और यह भी हो सकता है, हममें कोई मानता हो कि ईश्वर नहीं है, तो ये दोनों ही विश्वास हैं । आस्तिक भी विश्वासी है, और नास्तिक भी विश्वासी है । उनके विश्वास विपरीत हैं, यह बात दूसरी है लेकिन दोनों ही विश्वासी हैं, दोनों "बिलीफ" विश्वास का लक्षण ही यही है, जिसके सम्बन्ध में हमें कुछ पता नहीं है, उसके संबंध में हम कुछ मान लेते हैं । यह भी पता नहीं है, ईश्वर के होने का तो आस्तिक भी विश्वासी है, और नास्तिक भी विश्वासी है । धार्मिक दोनों से भिन्न होता है । धार्मिक आदमी का मतलब आस्तिक नहीं होता है, धार्मिक आदमी का मतलब होता है, जिसने जाना, और जो जान लेता है वह हाँ और न में उत्तर देने में असमर्थ हो जाता है । क्योंकि जो जानता है, उसमें निषेध और विधेय एक साथ सम्मिलित होते हैं ।

और जो जानता है, उसमें जीवन और मृत्यु, अंधेरा और प्रकाश एक ही रूप हो जाता है। उसमें अस्तित्व और अनस्तित्व एक ही सत्य के दो पहलू होके रह जाता है। श्रद्धा को तो ललकारने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि सब ललकार खो जाती है, तब श्रद्धा आती है। लेकिन ऐसी श्रद्धा शायद एक करोड़, दो करोड़, दस करोड़ में एक आदमी के पास होती है। बाकी लोगों के पास सिर्फ विश्वास होते हैं, और सब विश्वास बेईमानी है, और सब विश्वास श्रद्धा को रोकने वाले हैं। विश्वास का मतलब यह है कि मंजिल पर पहुंचने के पहले मान लिया कि मंजिल आ गई, और जो आदमी मंजिल आने से पहले मान ले कि मंजिल आ गई, तो उसकी यात्रा रुक जाय तो आश्चर्य तो नहीं ? जब मंजिल आ ही गई तो बात खत्म हो गई। आस्तिक इसी भांति रुका हुआ है। ईश्वर को उन्होंने मान ही लिया, जानने की जरूरत ही नहीं रह जाती, नास्तिक भी उसी तरह रुका हुआ है। उन्होंने भी मान लिया है कि ईश्वर नहीं है। और जो नहीं है, उसे खोजने की क्या जरूरत है। धार्मिक आदमी मानकर नहीं जीता। धार्मिक आदमी बहुत विद्रोही आदमी है, बहुत "रिबल्यस (Rebellious)" धार्मिक आदमी कहता है जिसके संबंध में मैं कुछ नहीं जानता उसके सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कहूंगा, और जो नहीं जानता उसके संबंध में जानने की कोशिश करूँगा। और जब तक नहीं जान लेता तब तक मेरा कोई विश्वास नहीं है। धार्मिक आदमी मूलतः "अग्नोष्टीक" होता है। धार्मिक आदमी मूलतः दावेदार नहीं होता है, वह रहस्यवादी होता है। वह कहता है, जो मुझे नहीं मालुम उसे जानने की कोशिश करूँगा, जानने की कोशिश करूँगा। और जिस दिन वह जान लेता है, उस दिन बड़ी कठिनाई में पड़ जाता है।

बुद्ध एक दिन एक गांव में प्रवेश करते हैं और एक आदमी ने आकर पूछा मैं आस्तिक हूं, मुझे ईश्वर पर भरोसा है, यह आपसे ही पूछना चाहता हूं, ईश्वर है ? बुद्ध ने ऊपर से नीचे तक उस आदमी को देखा, और कहा ईश्वर ? ईश्वर कहीं भी नहीं है, किस भ्रम जाल में पड़े हो ? उस आदमी की जान किसी ने हिला दी, वह आदमी कंप गया। बुद्ध आगे बढ़े दोपहर एक दूसरा आदमी उन्हें मिलने आया। और कहा मैं नास्तिक हूं, मेरा ईश्वर पर कोई भरोसा नहीं है। आपका क्या ख्याल है ? बुद्ध ने कहा, ईश्वर को नहीं मानते ? पागल तो नहीं हो गये हो ? उसके सिवाय, उसके अतिरिक्त कोई भी नहीं है, वह ही है। वह आदमी भी सुबह आने वाले आदमी की तरह कंप गया। लेकिन बुद्ध के साथ एक भिक्षु भी था, आनन्द वह बड़ी मुसीबत में पड़ गया। उसने दोनों उत्तर सुन लिए। वह प्रतीक्षा करने लगा, कब सांझ हो, कब एकान्त मिले, कि मैं बुद्ध से पूछूं कि यह तुमने क्या किया। सुबह को नहीं, दोपहर को हाँ। लेकिन उसके पहिले सांझ तक एक और आया और बुद्ध को पूंछा, मुझे कुछ भी पता नहीं है, ईश्वर है या नहीं ? आप कुछ कहेंगे, ईश्वर है कि नहीं ? बुद्ध चुप ही रह गए, और आँखें बन्द कर लीं। उस आदमी ने दो चार बार कहा कुछ कहो, लेकिन बुद्ध चुप ही रह गए। आनन्द, और भी मुसीबत में पड़ गया। दिन में उत्तर दिये, शाम को उत्तर भी नहीं दिया। जब रात बुद्ध सोने लगे, तब आनन्द ने कहा पहिले सोयें मत, नहीं तो मेरी रात भर की नींद नष्ट हो जायेगी। पहिले मुझे बताओ इसलिये क्या है ? बुद्ध ने पूछा कौन सी असलियत ? बुद्ध ने पूछा कौन सी असलियत ? आनन्द ने कहा सुबह एक उत्तर, दोपहर को दूसरा उत्तर और सांझ तीसरा उत्तर, मैं मुसीबत में पड़ गया हूं। बुद्ध ने कहा, उत्तर तुम्हें तो नहीं दिये गए थे। तुमने सुने क्यों ? जिसे दिये गए थे, उसी के लिए थे। आनन्द ने कहा, आप और मुसीबत करते हो, मैं साथ था मुझे सुनाई पड़ गए थे, मैं मुसीबत में पहुंच गया हूं। बुद्ध ने कहा, मैंने तीनों को एक ही उत्तर दिया है, और वह कि तुम अगर मेरे आधार पर "आथोरिटी" कोई प्रमाण, कोई प्राप्त आदमी के आधार पर विश्वास बनाने आए हो तो मैं तुम्हें विश्वास बनाने नहीं दूंगा। क्योंकि जो विश्वास कर लेता है, उनकी यात्रा बन्द हो जाती है। वह सत्य तक कभी भी नहीं पहुंचता है और हम सब विश्वास बनाये हुए लोग

शास्त्रों में से विश्वास खोज लेते हैं, गुरुओं में से विश्वास खोज लेते हैं। हम चौबीस घन्टे उस तलाश में हैं, कोई ऐसा विश्वास मिल जाय, जिसके सहारे हम जीलें, **हमें सत्य की कोई चिन्ता नहीं, हमें सहारा चाहिए। हमें सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं, हमें सान्त्वना चाहिए, हमें सत्य की खोज नही, हमें संतोष चाहिए।** संतोषी आदमी संतोष की तलाश में विश्वासों को घेर कर जी लेता है, विश्वास की कोई जड़ नहीं कोई बुनियाद नहीं। विश्वास सिर्फ हमारे भय के आधार पर खड़े हैं, हम भयभीत हैं, और अपने अज्ञान को स्वीकार करने की सामर्थ्य भी हममें नहीं है। हम इतने कमजोर हैं कि हम यह भी नहीं कह सकते कि हमें ज्ञान नहीं, हम अज्ञानी हैं। हमें आसानी से वह स्वीकार करने के लिये भी हिम्मत की जरूरत है। इतनी भी हिम्मत हममें नहीं है, इसलिये हम कोई भी विश्वास को पकड़ लेते हैं, और ज्ञानी बन जाते हैं, बिना जाने, जानने का मजा आ जाता है। दावेदार हो जाते हैं, और समझ लेते हैं कि पहुंच गये, ऐसे पहुंच गए कि भ्रांति में पड़े हुए लोग विश्वासी हैं। ऐसे विश्वासियों को तो सब तरह से हिला देने की जरूरत है ताकि उनकी यात्रा शुरू हो जाये, ताकि वे खोज पर निकल जायें। तो मैं आपसे कहूंगा श्रद्धा को तो कोई तर्क की चुनौती नहीं पहुंचती, क्योंकि श्रद्धा आती ही तब है तब आदमी तर्कों की चुनौती के उस पार चला जाता है। लेकिन विश्वासियों को सब तर्क हिला देते हैं, इसलिये विश्वासी कान बन्द करके जीता है, कहीं तर्क सुनाई न पड़ जाय। इसलिये विश्वासियों के मंडल हैं, दुकाने हैं, वहां समझाया जाता है कि विरोधियों की बात मत सुनना, तर्क की बात मत सुनना। कान बन्द कर लेना, कहीं कोई तर्क भीतर जाके विश्वास को नष्ट न कर दे। ऐसे विश्वास की कीमत कितनी है? एक तर्क से नष्ट हो जाय। और विश्वास तर्क से भी कमजोर है। ऐसे विश्वास का कोई मूल्य नहीं है। श्रद्धा का जरूर मूल्य है लेकिन, ध्यान रहे श्रद्धा का मतलब ही कुछ और है। श्रद्धा का मतलब है, जो जानने से हटना आती है, जान लेने से मजबूती आती है। जान लेने से जो पैर जमीन पर खड़े हो जाते हैं, जान लेने से जो हिम्मत और साहस आता है, जान लेने से जो आधार, और बुनियाद मिल जाती है।

अब एक अंधा आदमी हो वह प्रकाश पर विश्वास कर सकता है, श्रद्धा नहीं कर सकता है। अंधा आदमी प्रकाश पर विश्वास कर सकता है, श्रद्धा नहीं कर पाता। असल में अंधा आदमी श्रद्धा करेगा भी कैसे? एक आँख वाले आदमी को प्रकाश पर श्रद्धा होती है, विश्वास नहीं होता। उन दोनों में इतना फर्क है, जो जानता है उनका मानना कुछ और है, वह मानना नहीं, जानना ही है और जो बिना जाने मानता है, वह जानना नहीं है वह सिर्फ मानना है, अंधेरे में मानी गई बातों की कोई कीमत नहीं है।

हमारा देश हजारों सालों से इसी तरह के विश्वासों से भरा हुआ है। इस विश्वास के कारण हम अंधे से अंधे होते चले गए। और उन विश्वासों के कारण आँख खोलकर देखना भी बन्द कर दिया है, कहीं कोई विपरीत सत्य दिखाई न पड़ जाय। कुछ कहीं ऐसा दिखाई न पड़ जाये जो हमारे शास्त्रों में न हो, और बड़ी मुश्किल हो जाये। इसीलिये हमने विज्ञान की खोज नहीं की क्योंकि विश्वासी लोग विज्ञान की खोज नहीं कर सकते। विज्ञान की बात मान के चलती है तर्क जो संदेह का मूल है। विज्ञान की खोज का मौलिक प्रारम्भ यही है कि हम संदेह करने में समर्थ हों, हम संदेह नहीं कर सकते इसलिये हम विज्ञान खोज की नहीं कर सके। हम विश्वास करके जड़ हो के बैठ गए और "इसटेगनेन्ट" एक अवरुद्ध समाज एक मृत समाज हमने पैदा कर दिया और बहुत डर इस बात का है हम कितने हजारों साल से विश्वासी लोग हैं। अगर हम बदले तो कहीं ऐसा न हो कि कहीं विपरीत विश्वास को पकड़ लें।

"नक्सलाइट "विपरीत विश्वासी" वह कोई संदेह करने वाला व्यक्ति नहीं है, वह भी विश्वासी है सिर्फ किताब बदल लेता है, मुट्ठी उनकी पुरानी ही है। गीता को छोड़ देता है तो केपीटल को पकड़ लेता है,

और महावीर को छोड़ देता है तो मार्क्स के पैर पकड़ लेता है। हम विश्वासी कौम हैं और खतरा यह है कि इतने परेशान हो गए हैं पुराने विश्वास से ही यह डर है कहीं हम नये विश्वास न पकड़ लें। और ध्यान रहे, बहुत खतरनाक होते हैं, पुराने विश्वास से नये विश्वास क्योंकि, जब तक वे इतने पुराने न हो जायें तब तक उनसे छूटने का उपाय नहीं होता।

वहां रूस में भी यही हुआ, एक विश्वासी कौम, और उन्होंने १९१७ तक अंधे की तरह ईसाईयों के ऊपर विश्वास किया फिर वह अंधापन नहीं बदला, आँखें नहीं खुलीं, सिर्फ अंधेपन ने शक्ल बदली। और जहाँ मंदिर, मस्जिद और जीसस का चर्च था वहाँ क्रेमलीन के लाल सितारे आ गए, और वहाँ स्टेलीन, लेनिन, मार्क्स बैठ गए। फर्क कुछ भी नहीं हुआ, देवता बदल गए। और ध्यान रहे नये देवता खतरनाक सिद्ध होते हैं। क्योंकि उनसे छुटकारा पाने के लिये फिर हजारों साल लगते हैं, तब उनसे छुटकारा पाते हैं। हमारे देश के सामने भी वही सवाल है, हम विश्वासी कौम हैं यह हमारा सबसे खतरनाक लक्षण है, इसमें खतरा यह है कि किसी दिन विश्वास बदलें, कहीं ऐसा न हो कि हम दूसरा विश्वास पकड़ लें, इसीलिये हमें बहुत सचेत हो जाना चाहिये, विश्वास से, और समझ लेना चाहिये कि जो बिना जाने पकड़ा जायेगा वह बड़ा नुकसान पहुंचायेगा। बड़ा नुकसान तो पहुंचाता है कि हमारी सत्य की जिज्ञासा नष्ट हो जाती है। बड़ा नुकसान तो पहुंचता है कि हमारी पूछने की क्षमता क्षीण हो जाती है। फिर हम प्रश्न नहीं उठा पाते। और बड़ा नुकसान तो पहुंचता है, जो सत्य की निरंतर खोज है वह समाप्त हो जाती है, जबकि रोज-रोज जारी रहे तो ही जीवन जारी रहता है। जैसे नदी बहती रहती है तो ही वह सागर तक पहुंचती है, कोई तालाब सागर तक नहीं पहुंचता, तालाब बड़ा विश्वासी है, वह जहाँ रुका है, उसी को सागर समझ लेता है। फिर जाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। नदी बड़ी संदेहग्रस्त है, वह भागती है, दौड़ती है, खोजती है, पुकारती है, तोड़ती है मार्गों को, अनजान अपरचित रास्तों पर भटकती है, और सागर तक पहुंचती है, और जब नहीं पहुंचती, तब तक मानती नहीं है। मैं उस आदमी को धार्मिक आदमी कहता हूं जिसका चित्त नदी की भांति हो, जो खोज पर निकलता है। मैं उस आदमी को मुर्दा कहता हूं जो तालाब की तरह बन्द होकर बैठ गया और जिसने समझा कि सब पा लिया है। सब विश्वास कर लिया है, अब और कुछ खोजने का नहीं है।

● उन्हीं मित्र ने एक और सवाल पूछा है, उन्होंने पूछा है कि सनातन सत्यों को खंडन करने से क्या लाभ हो सकता है? उन्होंने पूछा है कि आज के नये विचार कल पुराने हो जायेंगे, तो पुराने विचार छोड़ने का क्या फायदा?

पहिली बात तो यह कि जो सत्य सनातन है उसे आज तक शब्दों में प्रकट नहीं किया गया और जो भी शब्दों में प्रकट हो जाता है वह सामयिक हो जाता है, सनातन नहीं रह जाता। जो "इटरनल" है जो शाश्वत है वह शब्दों में प्रकट होने के बाहर और जो भी हम प्रकट करते हैं, शब्दों में, भाषा में, वह सामयिक हो जाता है, युगीन हो जाता है, वह शाश्वत नहीं रह जाता। वेद भी, बाइबिल भी, कुरान भी, गीता भी, मैं जो कुछ कह रहा हूं वह भी, और भविष्य में भी जो कहेगा वह भी सभी युगीन सत्य है शाश्वत् नहीं, निश्चित ही जिनने युगीन सत्य कहे, उनने सनातन सत्य जाना, लेकिन जो जाना जाता है, वह कहा नहीं जाता। कहते ही युगीन हो जाता है। जो जाना जाता है वह कुछ और है, और जो कहा जाता है वह कुछ और है।

कोई भी सनातन सत्य आज तक मनुष्य की भाषा में नहीं उतर सका, न हो उतर सकेगा। सनातन का अर्थ ही है शाश्वत जिसका अर्थ ही यह है कि हम उसे जान सकते हैं, लेकिन कह नहीं सकते। कहना सामयिक हो जाता है। सब कहना समय का कहना है, जो सनातन सत्य कहीं भी नहीं है, जिनको आप पकड़ के

बैठ जायें। सनातन सत्य जरूर है, जिनको अगर पाना हो तो शब्दों की पकड़ छोड़ देनी पड़ेगी, छोड़ देनी पड़ती है। जिसे सनातन सत्यों तक जाना है, उसे सभी सत्यों से, शास्त्रीय सत्यों से छुटकारा पाना होता है। शास्त्रीय सत्यों में उलझा हुआ आदमी कभी भी सनातन सत्यों को उपलब्ध नहीं हो पाता। शब्दों और सिद्धान्तों में उलझा हुआ चित्त इतना निर्विकार नहीं हो पाता कि उस निराकार को जान ले।

शब्दों का भी अपना आकार है, अपना रंग भी है, अपना रूप भी है। और जो चित्त शब्दों से भरा हो वह कभी भी आकार के ऊपर नहीं उठ पाता। शायद आपको पता न हो हर शब्द की अपनी अलग छबि होती है। अगर आप एक पतले से कागज पर रेत के बहुत बारीक कण बिठा दें और नीचे से शब्द कहें राम..... तो कागज के ऊपर खास तरह की लहरों की एक खास तरह की जाली इस रेत में बन जाएगी। आप नीचे से कहें अल्लाह.....तो दूसरे तरह की जाली बन जायेगी। आप नीचे से कहें ॐ दूसरे तरह की जाली बन जाएगी। वह जो रेत के कण हैं, वे तत्काल एक पेटर्न एक ढाँचे में बंट जायेंगे, हर शब्द की अपनी ध्वनि है, हर शब्द का अपना रूप है, हर शब्द का अपना रंग भी है, हर शब्द का अपना आकार भी है। हर शब्द हमारे भीतर जगह को घेरता है। जितने ज्यादा शब्द हमारे हों चाहे वे कितने ही शास्त्रों मे से आए हों, कितने ही पवित्र ग्रन्थों से मिल गये हों, उनके कारण भीतर निराकार का दर्शन नहीं हो पाता। और जो सनातन है निराकार है, सब शब्द छोड़कर शून्य में प्रवेश करता है, वही केवल सनातन सत्य को जान पाता है। लेकिन जिसे हम शून्य में जान पाते हैं, उसे अगर हम शब्दों में कहने जायेंगे तो विकृति होनी अनिवार्य है, यह ऐसा ही है जैसे समझें।

आप मेरे घर आए और मैं वीणा पर कुछ बजाऊँ और आप सुन के लौटें और आप ऐसे लोगों के पास पहुंच जायें, जो बहरे हों, और आप उन्हें वीणा बहुत आनन्दपूर्ण थी, बहुत रस आया संगीत में बहुत अच्छी ध्वनि थी, बहुत सुन्दर था संगीत। प्राण खिल गए, फूल खिल गए, वे कुछ भी न सुनें, वे आपसे कहें थोड़ा चित्र बनाकर बताओ, तो हम कुछ समझ पायें। बहरे लोग, उनके पास आँखें हैं, मैंने जो आपसे संगीत में बजाया वह अगर आप कागज पर चित्र बनाकर बतायें, तो जो हालत हो जाये, वही हालत जो हम शून्य में जानते हैं, उन्हें हम शब्दों में कहने जायें तो माध्यम बदल जाता है, इसीलिए कोई भी सनातन सत्य नहीं कहा गया। कहने की बहुत बार कोशिश की गई है। कम्युनीकेट करने की बहुत बार कोशिश की गई है, लेकिन सनातन सत्य नहीं कहा गया। जिन्होंने कहा है उन्होंने यह भी साथ में कहा है जो कहना था वह शब्दों में नहीं कहा जाता, जो कहा था वह प्रवचन से नहीं उपलब्ध हो सकता।

लाओत्से ने जिन्दगी भर कोई किताब नहीं लिखी क्योंकि जब भी लोगों ने कहा कि तुमने जो जाना है वह लिख दो तो उसने कहा कि जो मैंने जाना है वह लिखने जाता हूं तो नहीं लिखा जाता, और जो लिखा जाता है वह मैंने जाना नहीं है। इस झंझट में मैं न पड़ूं। अंत में सब लोग नहीं माने, लाओत्से देश छोड़कर पहाड़ की ओर जा रहा था तो देश के सम्राट ने उसे चुंगी नाके पर पकड़ लिया, और उससे कहा जब तक लिख के नहीं जाओगे तब तक जाने न देंगे। मजबूरी से लाओत्से ने एक छोटी सी किताब लिखी। किताब का नाम है "ताओ ते किंग"। उस छोटी सी किताब में थोड़ी सी बातें लिखी हैं। और उन थोड़ी सी बातों में सर्वाधिक बात बार-बार लिखी है वह यह है, जो मैं कह रहा हूं उस पर विश्वास मत कर लेना क्योंकि मैंने जो जाना है, वह कुछ और है और जो पहिली बात उस किताब में लिखी है, वह यह है, सत्य कहा नहीं जाता और जो कहा जाता है वह कहने के साथ ही सत्य नहीं रह जाता। सनातन सत्य आपके हाथों में होते तो उन्हें छोड़ने की जरूरत ही नहीं थी। आपके हाथों में सनातन सत्य के नाम पर केवल सामयिक शब्द हैं, वह हो सकता है दो

हजार वर्ष पहिले के हों, कोई पाँच हजार वर्ष पहिले के हों, कोई दस हजार वर्ष पहिले के हों, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन किसी समय की धारा में प्रकट हुए शब्दों का हमारे पास संग्रह है। चाहे उसका नाम हम कुछ भी देते हों, चाहे उसे हम वेद कहें, चाहे बाइबिल कहें चाहे उसे हम कुरान कहें, चाहे उसे हम कुछ भी नाम दें। हमारे पास शून्य से उतरी हुई समय की धारा में जो शब्दों की भाषा में झलक आई हुई है, आहुति आई हुई है, वही हमारे पास है। वह ऐसा ही है जैसे मैं नदी के किनारे खड़ा हूं और पानी के दर्पण में मेरा चित्र बने और पानी के दर्पण में बने चित्र को कोई मुझे समझ ले कि मैं हूं और उसको पकड़कर बैठ जाय।

समय के बाहर "बियोन्ड टाइम" जो सत्य है उसकी धारा में प्रतिबिंब बनता है, हम उन्हीं प्रतिबिम्बों को पकड़ लेते हैं। उन प्रतिबिंबों को पकड़कर हजारों वर्ष तक बैठे रह जाते हैं, हाथ में कुछ नहीं रह जाता, सिर्फ पानी की लहरें होती हैं, कोई प्रतिबिम्ब नहीं होता। उन्हीं प्रतिबिम्बों को पकड़कर कोई यदि सोचता हो हमारे पास पुराने सत्य हैं, हम नये को खोज क्यों करें? तो उससे ज्यादा गहरा भ्रांति में कोई न पड़ेगा, उससे ज्यादा गहरे असत्यों में कोई न पड़ेगा। असत्यों में पहुंचने की सबसे सरल तरकीब यह है कि मान लेना कि सत्य हमारे पास है। सनातन सत्य परम्परा से चले ही आ रहे हैं, हम उनको पकड़ के जी लेंगे, खोज की कोई भी जरूरत नहीं है।

ध्यान रहे प्रत्येक व्यक्ति को जिसने सत्यों को जाना है, उन्हें पुनः पुनः खोजना पड़ता है सत्य की कोई परम्परा और ट्रेडीशन नहीं होती, सत्य की कोई बपौती और वसीयत नहीं होती। सत्य कोई "हेरीडिटी" में नहीं मिलता कि बाप मरे और लिखा जाये कि अब मेरे सत्य तेरे हाथ। धन मिल सकता है बाप से क्योंकि मकान आदमी का बनाया हुआ इंतजाम है, सत्य नहीं मिल सकता है बाप से क्योंकि सत्य आदमी का बनाया हुआ इंतजाम नहीं है।

सत्य प्रत्येक को स्वयं ही पाने होते हैं। इसलिए मैं जब यह कह रहा हूं, खोज करें सत्य की, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप कोई नया सत्य खोजें, खोजेंगे तो आप वही जो सदा से है, जो कृष्ण ने खोजा होगा, जो क्राइस्ट ने खोजा होगा, जिसका दर्शन मुहम्मद को हुआ होगा, जिसे जरथुस्त्र ने झांका होगा। वही झांकेंगे आप लेकिन झांकेंगे तो सदा ही अपनी निज की खिड़की से ही झांकना पड़ेगा। मुहम्मद की खिड़की से झांकने का कोई उपाय नहीं। इसलिए मुसलमान होना बेईमानी है, कृष्ण की खिड़की से झांकने का कोई उपाय नहीं, इसीलिये हिन्दू होना नासमझी है। महावीर की खिड़की से झांकने का कोई उपाय नहीं है इसलिये कोई जैन होकर तृप्त हो जाये तो ना समझी है। सत्य अपने को ही खोजने पड़ेंगे। सत्य तो वही है, लेकिन हर बार उसे अपनी ही आँखों से झांकना पड़ता है, अपनी ही आँखें खोल कर उसे पहिचानना पड़ता है, न हम दूसरे की जिन्दगी जी सकते न हम दूसरों की मृत्यु मर सकते और न हम दूसरे के सत्य को जान सकते। निश्चित ही जब भी हम जानते हैं तो पता चलता है कि यही औरों ने भी जाना, लेकिन इसके पहले यह भी पता नहीं चलता। जिस दिन आप जानेंगे तो आप कहेंगे ठीक है, किसी ने भी जो जाना होगा वह मैंने भी जाना, लेकिन उल्टा कहेंगे कि किसी और ने जाना तो मुझे जानने की क्या जरूरत है। मैं उसी को जान लूंगा और मान लूंगा। ऐसा नहीं हो सकता। शास्त्र आपकी गवाही बन जायेंगे, जिस दिन आप जानेंगे तो सारी दुनिया के शास्त्र गवाही देंगे कि ठीक है पहुंच गये हैं। उस दिन आप शास्त्र को समझ जायेंगे कि मैं भी वहीं खड़ा हूं जहां ये शास्त्रों को कहने वाला खड़ा हो रहा है, लेकिन उसके पहिले कोई उपाय नहीं, उसके पहिले शास्त्रों से कुछ भी नहीं मिल सकता।

मैं आपको न तो पुराने सत्यों को छोड़ने को कह रहा हूं, सत्य न तो नया होता है, न पुराना होता है, सिर्फ असत्य पुराने होते हैं, और असत्य नये होते हैं, सत्य तो सदा ही होता है उससे, पुराने, नये का कोई संबंध

नहीं, लेकिन जो सदा होता है, उसे सदा स्वयं ही जानना पड़ता है। सत्य एक निजी अनुभव है, अत्यन्त निजी अनुभव है, जैसे प्रेम एक जिनी अनुभव है, फिर भी प्रेम में तो दो की जगह होती है, सत्य में दो की भी जगह नहीं होती। सत्य में आप निपट अकेले रह जाते हैं, एकाकी रह जाते हैं। आपके पिता ने भी प्रेम जाना होगा उनके पिता ने भी प्रेम जान होगा, परम्परा से लोग प्रेम जान रहे हैं, लेकिन इतने लोग प्रेम जान चुके तो आप ऐसा न कहेंगे कि मैं किसलिये प्रेम जानूं ? मैं लैला मजनूं की किताब पढ़ लूंगा, मैं शीरी फरियाद को छाती से बांध लूंगा, मैं प्रेम को किसलिए जानने जाऊँ ? क्योंकि सारे लोग जान चुके हैं। सन तन सत्यों को जानने की मुझे क्या जरूरत है, लेकिन शीरी फरियाद को घोलकर भी पी ज यें तो भी प्रेम का कोई पता नहीं चलेगा, प्रेम को फिर से जानना पड़ेगा, सत्य भी प्रेम जैसा है, थोड़ा फर्क है, प्रेम को जानने में दो व्यक्ति की जरूरत है वह निजता भी दो की है प्रेम दो के बीच एक बहाव है। सत्य और भी अकेला है, वह दो के बीच बहाव नहीं है। सत्य एकाकी बहाव है अत्यंत नितान्त अकेलापन है "टोटल एलोन," एकदम कोई अकेला रह जाता है, शून्य में तब वह जिसे जानता है, वह सत्य है, वह सनातन है, वह सनातन सत्य के लिए मैं कह रहा हूं। मैं कोई नये सत्य के लिए नहीं कह रहा हूं और इसीलिए मैं कोई पुराने सत्य के खिलाफ नहीं कह रहा हूं, मैं सनातन सत्य के लिए कह रहा हूं। सनातन सत्य के खिलाफ वही सत्य खड़े हो गये हैं जो कभी वही सनातन सत्य से ही आये थे, कभी वे सनातन सत्य के ही अनुभव से जो शब्द निकले थे उन्हीं को हम पकड़ के बैठ गये हैं। और अब हम शब्दों में ही जी रहे हैं, शायद आदमी की जिंदगी में भटकाव का सबसे बड़ा मार्ग हो सकता है तो वह शब्द है, और शब्द इस भांति भटका सकते हैं कि हम भूल ही जायें कि शब्दों के बाहर भी कोई जगत है। हम शब्दों में ही खोजते उठते बैठते जीते हैं। हमारे चारों तरफ शब्दों की एक भारी दीवार है, हम इसके पार कभी नहीं उठ पाते। हर आदमी शब्दों की एक गहरी पर्त में दबा हुआ है और जीता है, और भटक जाता है। इन शब्दों से जरा ऊँचा उठना पड़े क्योंकि जो है वहां कोई शब्द नहीं, वहां शांति है। जो है वहां कोई सिद्धांत नहीं, वहां परम जीवन है, लेकिन हमारी कठिनाई यह है कि हम शब्दों में बात करते हैं, शब्दों में संवाद करते हैं, मजबूरी है, क्योंकि इसके सिवाय कोई उपाय भी नहीं है। लेकिन शब्दों में बात करते करते हमारे पास शब्द ही शब्द रह जाते हैं और हम एक कम्प्यूटर रह जाते हैं जिसके पास शब्द ही शब्द हैं और भीतर कुछ भी नहीं रह जाता।

नहीं मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप शब्दों को छोड़कर गूंगे हो जायें। मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि शब्दों के बाहर भी आपके अस्तित्व का कोई द्वार खुला रहे उसी द्वार से सत्य उतरता है और जिस दिन सत्य उस द्वार से आता है उसी दिन आप भी भली भांति जानते हैं कि उसे शब्दों में कहने का कोई उपाय नहीं।

सुना है मैंने फरीद तीर्थ यात्रा पर निकला है और निकलता है कबीर के आश्रम के पास से। फरीद के शिष्यों ने कहा हम रुक जायें। कबीर के पास दो दिन और दोनों की बातें होंगी जिसे सुनकर हमें बहुत आनन्द होगा। फरीद ने कहा रुकेंगे जरूर बातें भी होंगी लेकिन आप सुन नहीं पाओगे। फरीद के प्रेमी समझ नहीं पाते, वे सोचते हैं बातें होंगी तो हम जरूर समझ पायेंगे।

कबीर के आश्रम में बात मिलती है। कबीर के प्रेमी कबीर से कहते हैं कि फरीद गुजरता है यहां से रोक लें। आप दोनों की बातें होंगी सुनकर हमें बड़ा आनन्द होगा, और हमारे लिए तो स्वर्ग का द्वार खुल जायेगा। कबीर कहते है बातें ? जो बोलेगा वह नासमझ हो जायेगा। फिर फरीद आता है, कबीर के आश्रम में रुकता है वे मिलते हैं, हँसते भी हैं, गले मिलते हैं, वे रोते भी हैं, घंटे तक, लेकिन बातें कुछ

नहीं होती। फिर दो दिन गुजर जाते हैं, तो भक्तों पर कैसी मुसीबत गुजरी होगी वह हम समझ सकते हैं। बैठे रहे प्रतीक्षा में, प्रतीक्षा में घंटे लम्बे मालूम लगने लगे, घड़ियां गुजरना मुश्किल हो गईं, लेकिन फरीद और कबीर बोलते नहीं, कभी एक दूसरे के सामने देखते हैं, कभी हँसते भी हैं, कभी रोते भी हैं, कभी एक दूसरे के हाथ में हाथ डालते हैं, लेकिन चुप्पी है वह नहीं टूटती। फिर दो दिन गुजर गये, फिर बिदा के क्षण आ गये, बिदा हो गये। बिदा होते ही कबीर के शिष्यों ने पूछा कि तुमने यह क्या किया ? बोले क्यों नहीं ? दो दिन हमारी मुसीबत कर दी। कबीर ने कहा अगर मैं बोलता तो न समझ हो जाता क्योंकि मैं जो जानता हूं वह बोला नहीं जाता क्योंकि वह फरीद ही जानता है, अगर फरीद कुछ भी बोलता तो वह गलत हो जाता। तुमसे मैं जो बोलता हूं वह थोड़ा सा गलत ही है लेकिन यह चल जाता है। क्योंकि तुमको सही का कुछ भी पता नहीं है, और तुमसे बिना बोले नहीं चलेगा, फरीद से बिना बोले भी चल गया। हमने एक दूसरे को समझा, हम एक दूसरे से बोले चुप्पी में मौन में।

फरीद के शिष्यों ने गांव के बाहर आते ही पूछा कि यह तुमने क्या किया ? आपने कैसा अन्याय किया ? यह हम पर कैसी ज्यादती है ? हमसे दो दिन गुजारने मुश्किल हो गये। ये कैसी ऊब पैदा करली ? आप बोले क्यों नहीं ? फरीद ने कहा मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था कि हम बोलेंगे जरूर लेकिन तुम सुन नहीं पाओगे। एक और भी बोलना है जो शब्दों से बाहर होता है। और ऐसे कबीर जैसे आदमी के पास जो बिना शब्द से जीता हो, उसके पास मुझे बुलवा के मेरी फजीहत करवाना चाहते हो। जिसने असली सूरज को देखा है उसके सामने मिट्टी के दिये रखने से कुछ मतलब था ? और जिसने असली सोना देखा है उसके सामने पीतल के गहने प्रकट करने से क्या मेरी अमीरी प्रकट होती ?

नहीं सत्य आज तक कहा नहीं गया, सत्य की जगह गेप, सत्य की जगह खाली छूट गई है, इसलिए असली शास्त्र पढ़ना हो तो जहां जहां अक्षर हैं वहां वहां छोड़ देना, और जहां जहां खाली जगह हो वहां वहां पढ़ लेना 'बिटवीन दी लाइन' लकीरों के बीच में शब्दों के बीच में जहां खाली जगह है वहां जरा गौर से देखना शायद वहां सत्य मिल जाये। शब्दों में सत्य नहीं मिलेगा, वह सिर्फ आड़ी टेड़ी लकीरें हैं स्याही से खींची गई, कोरे कागज में शायद इशारा हो, भरे कागज में कोई इशारा नहीं होता। खाली जगह में कोरे मन को उपलब्ध होता है। इसलिए जिन मित्र ने यह पूंछा है, मैं कोई नए सत्य के लिए नहीं कह रहा हूं, किसी पुराने सत्य के खिलाफ नहीं कह रहा हूं। पकड़े गये सत्य असत्य हो जाते हैं। उन्हीं के खिलाफ कह रहा हूं। जाने गये सत्य ही सत्य होते हैं। उनके पक्ष में कह रहा हूं। सनातन सत्य को जानना हो तो सामयिक से मुक्त होना जरूरी है।

● एक और मित्र ने पूछा है कि, मादक द्रव्य नशीली चीजें, शराब, आदमी को शैतान बना देती हैं, यह आप उनके विरुद्ध में क्यों कुछ नहीं कहते ?

यह सवाल जरा महत्वपूर्ण है, उसे जरा समझ लेना जरूरी है। पहली बात तो यह समझ लेना उपयोगी है कि आदमी बेहोश होना क्यों चाहते हैं ? और ऐसा कोई युग नहीं हुआ कि जब आदमी ने बेहोश होना न चाहा हो, चाहे वेद के युग का सोमरस हो चाहे शराब हो, दारु हो, अफीम हो, गांजा हो, भांग हो, या आधुनिक युग का मेस्कलीन हो, एल. एस. डी. हो, कुछ भी हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

आदमी बेहोश होना क्यों चाहते हैं। ठेठ बंदर के युग से लेकर एल्डुअस-हक्सले तक आदमी बेहोश होना क्यों चाहते हैं ? जरूर आदमी की होश की जिन्दगी सुखद नहीं। आदमी की होश की जिन्दगी वेदनापूर्ण है। आदमी जहां जीता है वहां कष्ट है, दुख और दुख और जहर और जहर है। आदमी जहां है वहां कांटे ही कांटे हैं। उस सबको भूलने की जरूरत

आदमी को सदा से मालुम होती रही। भूलने के बहुत से उपाय उसने सोचे हैं, रासायनिक तरकीबें खोजी हैं, भूलने की धार्मिक तरकीबें खोजी हैं, भूलने की मानसिक तरकीबें खोजी हैं, भूलने की शारीरिक तरकीबें खोजी हैं, भूलने की बहुत तरकीबें खोजी हैं।

एक आदमी गांजा पी के भूल जाता है उस जिन्दगी को जो वह वहां था, उन लोगों को जिनसे सम्बन्धित था, उन बातों को जो उसकी छाती पर पत्थर बन गईं थीं। शराब पी के भूल जाता है उस व्यापार को, दुकान को, बाजार को, जो उसके प्राणों में तीरों की तरह छिद गये थे। अफीम खा के भूल जाता है उन यत्नों को जिसके साथ सोचा था एक स्वर्ग बन जायेगा, लेकिन नर्क बन गया। मेक्सलीन ले लेता है एल. एस. डी. ले लेता है, और हजारों तरकीबों से अपने आपको भुला देता है। थोड़ी देर के लिए वह नहीं हो जाता है और जैसे जैसे सभ्यता बढ़ी है वैसे वैसे भूलने की आकांक्षा तीव्र हुई है, लेकिन कुछ लोग हैं जो इसे बिना समझे कहेंगे कि मादक द्रव्य बन्द किये जायें। मैं उन लोगों में से नहीं हूं। मैं मानता हूं कि उनकी दृष्टि अवैज्ञानिक है, मैं मानता हूं कि जिंदगी में से दुख कम हो, मैं मानता हूं कि जिंदगी में सुख हो आनन्द हो, मैं मानता हूं कि जिंदगी में रस के द्वार खुलें तो मादकता अपने आप क्षीण हो जाये। मैं नहीं मानता हूं कि दुनिया में मादक द्रव्य बन्द किये जायें तो जिन्दगी में आनन्द और रस बढ़ जाये तो इतना ही हो सकता है कि दुनिया में ठीक शराब न मिले और लोग स्प्रिट की बोतलें पी जायें और मर जायें। आदमी जैसा है वैसा याद रखने योग्य नहीं है, मेरे लिये इसीलिए आदमी कैसा हो यह सवाल है, जिससे भूलने की जरूरत न रह जाये ध्यान रहे अगर आप आनन्दित हों तो आप कभी भी भूलना न चाहेंगे, जब आप दुखी हैं तब आप पीठ फेरना चाहते हो। वह कुछ भी हो इससे कुछ भी फर्क नहीं पड़ता, जिंदगी को ऐसी बनाने की जरूरत है, और आदमी की जिंदगी को ऐसे नियम और ऐसी व्यवस्था और ऐसी दिशा देने की जरूरत है कि जिंदगी में इतना रस हो, इतना आनन्द हो सके, फिर वह भूले जिंदगी को तो अपने आप नासमझ सिद्ध हो जाये। वह खुद की आंखों में नासमझ हो जायें। लेकिन हम जिंदगी को ऐसी नहीं बना पाते, उल्टे हम जिंदगी में जो भूलने की तरकीबें हैं उन्हें कानून, कोई तरकीबों से रोक दें। कोई कानून उसे नहीं रोक पायेगा, क्योंकि आदमी की यह जरूरत है। जैसा कि आदमी आज है, उसकी यह जरूरत है, तब हजारों वर्ष के शिक्षण, हजारों वर्ष के धर्म गुरुओं के उपदेश कुछ मतलब नहीं ला पाते, कुछ प्रयोजन हल नहीं होता। कुछ लोग चिल्लाये चले जाते हैं, पाप है नर्क चले जाओगे। और कुछ लोग पाप किये जाते हैं और नर्क की बेफिक्र यात्रायें करते रहते हैं, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

जरूर आदमी की जरूरत कुछ गहरी है जो वह नर्क से भी भयभीत नहीं होता। पाप से भी भयभीत नहीं होता। फिर वह धर्म गुरुओं की बातें सुने तो बड़ी हैरानी हो जाती है। धर्मगुरु यहां तो कहते हैं शराब मत पीना और भविष्य में स्वर्ग में शराब के चश्मे बतलाते हैं। वह कहते हैं भविष्य में स्वर्ग में शराब के झरने बह रहे हैं और यहां एक चुल्लू शराब के लिये नर्क भेजवा रहे हैं, तो देवताओं की क्या हालत हुई होगी? अब जहां शराब के चश्मे बह रहे हैं, उसी स्वर्ग में जाने के लिये बेचारा एक चुल्लू शराब छोड़ रहा है। आदमी किसी भी तरह वहां पहुंच जाये जहां शराब के झरने बह रहे हैं। यहां पर धर्म गुरु बता रहे हैं कि स्त्रियों से बचना और वहां बताते हैं कि स्वर्ग में जो अप्सरायें हैं वे सोलह वर्ष से बड़ी उम्र की नहीं होतीं, उनकी उम्र सोलहवें साल पर रुक जाती है (हास्य तालियां) और उन्हीं अप्सराओं को पाने के लिये यहां स्त्रियों से बचना पड़ेगा, भागना पड़ेगा।

यह क्या, सब पागलपन है, वही प्रलोभन जिसे यहां रोक रहे हो, वही प्रलोभन वहां दे रहे हो। जरूर आदमी की जरूरत बहुत गहरी मालुम पड़ती है वे तुम्हारे स्वर्ग में भी नहीं जायेंगे जहां शराब के चश्मे हों

और वहाँ औरतें सोलह वर्ष से ऊपर न जाती हों तो रहने दो हम नर्क में ही जाना पसन्द करेंगे।

धर्म गुरुओं को पता है कि आदमी की बुनियादी जरूरतें क्या हैं? लेकिन मुझे लगता है कि आदमी की बुनियादी जरूरतों को समझने की चिन्ता, सहानुभूति ही नहीं दिखलाई गई, आदमी की बड़ी जरूरतें तो यह हैं कि उनकी जिन्दगी आनन्द की एक धारा होनी चाहिए। दुःख की एक धारा नहीं, और जब तक दुखी है तब तक वह नशे की कोई धारा खोजे तो वह क्षम्य है, अपराधी नहीं है और जब तक हम जिन्दगी की ऐसी एक व्यवस्था नहीं बना सकते जहाँ आदमी का जीवन सुख आनन्द और नृत्य हो जाये तब तक मैं समझता हूं कि बजाय शराब बन्दी के कोशिश करनी चाहिए अच्छी शराब बनाने की, एक ऐसी शराब बनाने की जो लोगों के ऊपर स्वास्थ्य को नुकसान न पहुंचाये। ऐसी शराब बनाने की जो लोगों को बीमारियों में न डाल दे और ऐसी शराब बन सकती है। जब आदमी चाँद पर जा सकता है तो क्या यह संभव नहीं है कि ऐसी शराब न बनाई जाये?

आज विज्ञान की इतनी समझ है कि ऐसी शराब बना सकते हैं, लेकिन सच तो यह है कि ऐसी शराब तो खोज ली गई है, लेकिन जिसके पास शराब के व्यापार हैं वे उन द्रव्यों को बाजार में आने देने में राजी नहीं हैं, अन्यथा उनके शराब के बाजार का क्या होगा? सच बात तो यह है कि मेस्कलीन और एल० एस० डी० बहुत ही निर्दोष मादक द्रव्य हैं, बहुत ही "इनोसेन्ट" हैं, जिनसे सच ही शायद ही नुकसान पहुंचता हो। लेकिन दुनियाँ भर की हुकूमतें उनके खिलाफ हैं, और जो आदमी उनके ऊपर प्रयोग कर रहे हैं तो उन्हें सजायें दी जा रही हैं, और जेलों में डाला जाता है।

दो तरह का डर है। एक तो शराब बेचने वालों को डर है कि शायद ऐसी शराब निकल आये जो आदमी को स्वास्थ्यप्रद हो, आनन्द दायी हो और शराब की कोई बुराइयाँ न हों, कोई गल्ती न हो तो शराब के विश्व व्यापी व्यापार का क्या होगा? और दूसरा डर धर्म गुरुओं को है कि कहीं ऐसा नशा न निकल आए जिसमें कोई नुकसान न हों, तो हम किस शराब के खिलाफ भाषण करेंगे। लोगों को किस शराब के लिये व्रत दिलवायेंगे? बहुत मुश्किल हो जायेगी धर्मदाता के खिलाफ ऐसी कोई चीज नहीं खोजी जानी चाहिए।

यह भूल जाना, मैं उसे सहानुभूति से देखना चाहता हूं और मानता हूं कि हम आदमी की जिन्दगी में न तो नई समझ ला पाये, न तो हम आदमी की जिन्दगी में ऐसा धर्म ला पाये जो उसे आनन्द की जिन्दगी में भर दे। इसलिये आदमी भूलना चाहते हैं। दो उपाय हैं, एक तो हम उस दिशा में खोज करें। बड़ी कठिन है वह बात, क्योंकि उस दिशा में खोज करने से हमारी हजारों साल की व्यवस्था में चोट पहुंचती है। इसके लिये मैं एकाध उदाहरण दूं। क्योंकि यह तो बहुत बड़ी बात हो गई, जरूरत होगी तो मैं कल उस पर फिर बात करूँगा। एकाध उदाहरण दूं।

जो बच्चे माँ के पास बड़े होते हैं उनकी जिन्दगी में बहुत सुख होना बड़ा मुश्किल है। यह बहुत ही अजीब सी बात मालुम पड़ेगी। असल में जो बच्चा माँ के पास बड़ा होगा उसको माँ के दो रूप देखना पड़ते हैं, एक ही साथ। कभी माँ बहुत प्रसन्न होती है, आनन्दित होती है, कभी बच्चों से प्रेम करती है, कभी माँ नाराज होती है, बहुत दुखी होती है, बच्चों को मारती भी है, ठोकती भी है, क्रोध भी करती है। बच्चा उसे प्रेम भी करता है और माँ जब मारती है, ठोकती है तो उसे घृणा भी करता है। माँ के पास बड़े होकर बच्चे कभी सुखी नहीं हो सकते क्योंकि वह लड़का है, जो कल पति बनेगा, जिस स्त्री से वह प्रेम करेगा उसी स्त्री से वह घृणा भी करेगा। उसकी पूरी आदत मां के साथ जीकर एक ही स्त्री को प्यार भी करेगा और घृणा भी करेगा। वह जिस स्त्री से प्रेम करेगा, उसकी ओर प्रेम का हाथ बढ़ायेगा और दूसरी ओर घृणा की छुरी भी तैयार रखेगा। सांझ प्रेम करेगा, सुबह गर्दन दबायेगा, दोपहर फिर माफी

मांगेगा और सांझ फिर प्रेम करेगा। और यही चक्कर चलेगा, एक ही व्यक्ति के संबंध में दोहरी भावनाएं बहुत खतरनाक सिद्ध होने वाली हैं।

इजराइल में उन्होंने एक छोटा सा प्रयोग किया है, जिनमें उन्होंने बच्चे को मां से दूर रखने की कोशिश की है। दूर रखने का मतलब यह नहीं कि मां से नहीं मिलने दिया है। मां से मिलने दिया है और मां कभी कभी आकर उसको नर्सरी में बच्चे को मिल जाती है, तब बच्चा मां का एक ही रूप देखता है—प्रेम से भरा हुआ, और उसके मन में आत्म विरोधी दो स्वर पैदा नहीं हो पाते। मां जब भी उसे मिलने आती है, महिने में पन्द्रह दिन में, हप्ते में तभी उसे गले लगाती है। स्त्री का रूप उसके मन में प्रेम का ही रूप निर्माण करता है। वह जब दुःखी हो, परेशान हो तो मिलने नहीं आती। वह मिलने तब आती है जब वह खुशी हो और आनन्दित होती है। अठारह, बीस साल तक बेटा पलता है नर्सरी में। मां उससे मिलती है, बाप उससे मिलता है। मां के साथ एक ही संबंध होता है—प्रेम का, उस पर स्त्री के प्रति एक ही धारा होगी प्रेम की। दूसरी बात यह कि मां बाप को लड़ते नहीं देख पाते, जो कि घर में रहे तो अंधा लड़का भी देख लेगा। उसको आंखें होने की जरूरत नहीं, क्योंकि मां बाप के बीच शांति के क्षण इतने कम होते हैं और युद्ध के क्षण इतने ज्यादा होते हैं इसके लिए अंधे होकर भी दिखाई पड़ता है कि मां बाप लड़ रहे हैं, और जब बचपन से मां बाप को लड़ते देखता है तो लड़ना जिन्दगी का हिस्सा बन जाता है। और हर बच्चा अपने मां बाप को अपनी जिन्दगी में दुहराता "रिपीट" करता है। स्वभावतः लड़कियां अपनी मां को दुहराती हैं, बच्चा अपने बाप को दुहराता है, और करीब करीब वही कहानी हर पीढ़ी में वापिस दुहराई जाती है। जो आपके पिता ने आपकी मां के साथ किया था, वह तुम अपनी पत्नी के साथ किये जाते हो। थोड़ा बहुत फर्क पड़ता है, लेकिन उस फर्क से बहुत कुछ फर्क नहीं पड़ता। हर कहानी उसी ढांचे में दौड़ती चली जाती है। नर्सरी में मां-बाप दोनों साथ आते हैं, नर्सरी में आकर लड़ते नहीं, और घर में लड़े हों तो साथ आते ही नहीं। दोनों भले मन लिये हुए आते हैं, मित्रतापूर्ण होते हैं, शत्रुतापूर्ण नहीं होते। उनके मन में प्रेम चलता होता है, तलाक नहीं चलता होता है, तब वे बच्चे को देखने आते हैं। बच्चे के मन में उन दोनों की प्रतिमा आपस में प्रेम की प्रतिमा होती है। यह बच्चा और तरीके की जिन्दगी जी सकेगा। उसको शायद शराब की जरूरत कम पड़े। यह बच्चा शायद नशे मे खोना जरूरी न समझे। यह मैंने एक पहलू की बात की कि जिन्दगी 'मल्टीडाइमेन्सनल' जिन्दगी क बहुत आयाम हैं। जिन्दगी के सब आयामों की खोज की जाय तभी हम ऐसे आदमी को जन्म दे पायें जिसे नशे की जरूरत न हो, लेकिन नेताओं को इससे कोई मतलब नहीं, उनको मतलब है शराब नहीं होना चाहिये। आदमी भुला रहा है, और आदमी तब तक भूलता रहेगा, जब तक आदमी आनन्द की एक धारा न खोज ले, या तो समाज ऐसी व्यवस्था खोजे। लेकिन यह कब होगा, यह कहना मुश्किल है। यह व्यवस्था कब आएगी, यह कहना मुश्किल है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति चाहे तो अपने जीवन में आनन्द की धारा अवश्य खोज सकता है। सारे अवरोधों के बावजूद अगर कोई व्यक्ति चाहे तो अपने भीतर से आनन्द का श्रोत खोज सकता है।

मैं अपने भीतर के आनन्द के श्रोत खोजने की व्यवस्था को ही ध्यान कहता हूं। हमारे भीतर भी आनन्द की बड़ी ही रसपूर्ण ग्रन्थियां हैं। लेकिन हम उन तक जाते ही नहीं, हम अपने बाहर ही जीते हैं और बाहर ही समाप्त हो जाते हैं। हम सब उस खजाने का पता ही नहीं जानते जो हमारे भीतर दबा है। अगर कोई व्यक्ति ध्यान की, उस भीतर की धारा को खोज ले तो उसे जगत में फिर शराब की और नशे की जरूरत नहीं रहती। शराब पीके और ताश खेलके अपने को भुलाने की जरूरत नहीं रह जाती। रोटरी और लायन्स में बैठ कर भी अपने को भुलाने की जरूरत नहीं रहती।

भुलाने की जरूरत बिदा हो जाती है, अगर हमारे भीतर "रिमेम्बरिंग" आ जाय, उसका स्मरण आ

जाय जो हमारे भीतर आनन्द का श्रोत है। वह ध्यान की कुदाली से खोदा जा सकता है।

• एक अन्तिम सवाल एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान से प्रयोजन क्या है ?

यही है ध्यान का प्रयोजन कि आपकी जिन्दगी दुख की एक कहानी न रह जाय बल्कि आनन्द का एक झरना बन जाय, और आपके भीतर, प्रत्येक के भीतर इतनी क्षमता है और इतने अनन्त श्रोत हैं कि वे सब अगर प्रकट हो जायें तो आपकी जिन्दगी में चारों तरफ फूल और सुगंध फैल जाय। चारों तरफ जिन्दगी में वीणा बजने लगे फिर उसे भुलाने की जरूरत न रहे।

जिन मित्रों को ध्यान में सच में ही आकर्षण है और ध्यान को समझना चाहें उनके लिए रात की अलग बैठक है। तो ध्यान के संबंध में और भी चार छः प्रश्न हैं उनकी मैं रात की बैठक में बात करूँगा। क्योंकि ध्यान को समझने से कुछ नहीं होगा, ध्यान करने से कुछ होगा। ध्यान करके देखें और देखिये अपने भीतर जाकर, खोजें उसे जो अपने भीतर अपनी संपत्ति छिपी है। जिस दिन उस सम्पत्ति पर आपका हाथ पड़ जाये उस दिन दुनिया में आपको विस्मरण करने की जरूरत नहीं रह जायेगी। मेरे लिए धर्म, आत्मस्मरण "सेल्फरिमेम्बरेन्स" और धार्मिक व्यक्ति के अतिरिक्त कोई आदमी ऐसा नहीं है जो अपने को भुलाने का रास्ता न खोजे। रास्ते अलग होंगे। रास्ते खोजने पड़ेंगे सेक्स में, संगीत में, सिनेमा में कहीं न कहीं रास्ता खोजना पड़ेगा अपने को भुलाने के लिए क्योंकि हम इतने दुखी हैं कि अपने साथ जीना बहुत कठिन है।

एक मजे की बात, अगर आपको एक कमरे में अकेला छोड़ दिया जाये तो आप कहते हैं बड़ी मुश्किल हो जाती है। अकेला जीना बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन आपने कभी सोचा है कि अकेले जीना मुश्किल हो जाता इसका मतलब क्या होता है ? अपने साथ जीना मुश्किल हो जाता है, और मजा यह है कि जिन मित्रों के साथ मिलकर आप आनन्द उठा रहे हो वह भी अकेले में जीना मुश्किल पाते हैं। दोनों अकेले में जीना मुश्किल पाते हैं तो दोनों आनन्दित कैसे हो सकते हैं ? मुश्किल दुगनी हो जायेगी, आनन्दित नहीं हो सकते। जैसे दो भिखारी एक रास्ते पर खड़े होकर एक दूसरे से भीख मांगने लगें, ऐसे ही हम सारे लोग हैं। अकेले में हर आदमी मुश्किल में पड़ जाता है। दूसरे के साथ बड़े आनन्द में दिखाई पड़ना सिर्फ दिखावा होगा। थोड़ी देर में मुश्किल आजायेगी और असली चीजें प्रकट होंगी। तब दूसरे के साथ जीना भी मुश्किल हो जाता है। असल में जीना मुश्किल है क्योंकि जीने के स्रोत का हमें कोई पता नहीं। जीने का राज और जीने की कुंजी का हमें कोई पता नहीं है। उस महल का हमें कोई पता नहीं जिसकी दिवाल पर हम खड़े हैं। उसकी कुंजी खोजी जा सकती है। उसकी कुंजी ही धर्म है, और उस कुंजी का नाम धर्म है। जिन मित्रों को उस कुंजी का ख्याल हो वह आज रात को उस कुंजी की तलाश में थोड़ा श्रम करें। थोड़े से ही श्रम से वह कुंजी मिल जाती है।

जीसस के छोटे से वचन से मैं अपनी बात पूरी करूँ। जीसस ने कहा तुम एक कदम चलो उस परमात्मा की तरफ और परमात्मा तुम्हारी तरफ हमेशा हजार कदम चलने को तैयार है। लेकिन हम एक कदम भी नहीं चल पाते वही हमारा दुख है। हम एक कदम उठा पायें तो हमारे ऊपर अनंत वर्षा हो जाती है। हमारे लिए फिर शराब बन्द नहीं करनी पड़ती, फिर शराब व्यर्थ हो जाती है। फिर शराब छोड़ना ही पड़ती है। शराब पीना असम्भव हो जाता है। कुछ और प्रश्न रह गये हैं वे कल सुबह मैं आपसे बात करूँगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना उससे अनुग्रहीत हूं। और अन्त में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●●●

आलोक गंगा

(स्वामी चैतन्य भारती, दिल्ली के—घना अंधकार व्याप्त है चारों ओर, और असीम अज्ञान में जीता हूं—का आचार्य श्री द्वारा भेजा गया उत्तर)

मेरे प्रिय,
प्रेम। अंधकार दिखता है न ?
उसे ही उसकी समग्रता में देखो।
उससे भागना भर नहीं।
उसमें ही जियो और उसमें ही जागो।
भागे कि भटके।
अंधकार से पलायन आलोक में नहीं, बस और गहन अंधकार में ही ले जाता है।
क्योंकि, प्रश्न अंधकार का है ही नहीं।
प्रश्न है स्वयं के सोये होने का
इसलिए, जागे कि अंधकार मिटा।
जागना ही आलोक है।
जागो—अंधकार को ही विषय (Object) बना लो और जागो।
अंधकार पर ही ध्यान (Meditation) करो और जागो।

रजनीश के प्रणाम
२-१-१९७१

[श्री लालप्रताप, ग्राम-भुड़हा, पो० साँगीपुर, जिला प्रतापगढ़ (उ० प्र०) को आचार्य श्री द्वारा लिखा गया पत्र जब उन्होंने आचार्य श्री से 'पूछा कि क्या आप मुनिवर देव व्यास ही नहीं हैं जो देश, काल व स्थितियों के बदले हुए अपने ही पूर्व कथित तात्विक विचारों को सर्वथा अनूठा, नया भाष्य, नया रूप, नया अर्थ देने फिर से प्रगटे हैं ?']

मेरे प्रिय,
प्रेम। सागर तो एक ही है।
और इसलिये अनेक दिखाई पड़ने वाली लहरें भी अनेक नहीं हो सकती हैं।
प्रत्येक लहर में एक ही सागर है !
वही आता है, वही जाता है।
लहरों से तो बस उसके इस आने जाने की पगध्वनि ही दिखाई-सुनाई पड़ती है।
लहरें नहीं ही हैं।
सागर ही है।
लेकिन लहरें दिखाई पड़ती हैं और सागर अदृश्य है।
शब्द दिखाई पड़ते हैं, सत्य अदृश्य है।
शरीर दिखाई पड़ते हैं, अस्तित्व अदृश्य है।

रजनीश के प्रणाम
२७-१२-७०

[रायपुर (म० प्र०) के चित्रकार श्री कमलेश को लिखा गया पत्र जब श्री कमलेश ने अपने चित्रों की प्रदर्शनी के अवलोकनार्थ आचार्य श्री को आमंत्रित किया]

मेरे प्रिय,

प्रेम। यह जानकर अति आनन्दित हूं कि तुम्हारे चित्रों की प्रदर्शनी हो रही है। तुम्हारे चित्रों की बहुत संभावनायें हैं। शायद तुम्हारे चित्र संभावनाओं के ही चित्र हैं। वे पूर्ण नहीं हैं। **और कोई भी अच्छा चित्र कभी भी पूर्ण नहीं होता है।** पूर्णता तो मृत्यु का ही दूसरा नाम है। **और तुम्हारे चित्र जीवन्त हैं। और इसीलिये अधूरे हैं। और जो तुम उनसे कहते हो वह नहीं, वरन् जो नहीं कह पाते हो, वही महत्वपूर्ण है।** इन चित्रों को पूरा करने की कोशिश मत करना। उनका अधूरापन तो बीज की भांति है। और बीज में अर्थ है, गति है, प्राण है। वृक्ष में तो वह सब चुक जाता है। मेरी हार्दिक शुभकामनाएं स्वीकार करना। वहां सब को मेरे प्रणाम कहना।

रजनीश के प्रणाम

(एक मित्र को लिखा गया आचार्य श्री का एक पत्र)

मेरे प्रिय,

प्रेम। अदृश्य को दृश्य करने का उपाय पूछते हैं ?

दृश्य पर **ध्यान** दें।

मात्र देखें नहीं, ध्यान दें।

अर्थात् जब फूल को देखें तो स्वयं का सारा अस्तित्व **आंख** बन जाये।

पक्षियों को सुनें तो सारा तन-प्राण **कान** बन जाये।

फूल देखें तो **सोचें** नहीं।

पक्षियों को सुनें तो **विचारें** नहीं।

समग्र चेतना (Total Consciousness) देखे या सुने या सूंघे या स्वाद ले या स्पर्श करे।

क्योंकि संवेदनशीलता (Sensitivity) के उथलेपन के कारण ही अदृश्य दृश्य नहीं हो पाता है।

और अज्ञात अज्ञात ही रह जाता है।

संवेदना को गहरावें।

संवेदना में तैरें नहीं, डूबें।

इसे ही मैं ध्यान (Meditation) कहता हूं।

और ध्यान में दृश्य भी खो जाता है और अंततः दृष्टा भी।

बचता है केवल दर्शन।

उस दर्शन में ही अदृश्य दृश्य होता है और अज्ञात ज्ञात होता है।

यही नहीं—अज्ञेय (Unknowable) भी ज्ञेय हो जाता है।

और ध्यान रखें कि जो भी मैं लिख रहा हूं—उसे भी सोचें न वरन् करें।

'कागज लेखी' से न कभी कुछ हुआ है, न हो ही सकता है।

'आंखन देखी' के अतिरिक्त और कोई द्वार नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

१२-१-७१

(एक और पत्र, श्री दिनेश शाही, भिलाई नगर को लिखा गया)

प्रिय दिनेश,

प्रेम ! जीवन है मिट्टी मिले सोने जैसा ।
इसलिये, स्वर्ण-शुद्धि का संघर्ष जरूरी है ।
उससे घबड़ाओ न ।
जलना ही होगा—बहुत तरह की अग्नियों में जलना होगा । पर उससे ही निखरोगे भी और आज जो अभिशाप है अंततः उसे ही वरदान पाओगे ।
सुशीला को प्रेम ।
तुम दोनों कभी बम्बई आकर मिल जाओ ।

रजनीश के प्रणाम
१-४-१९७१

रजनीश के प्रति

(शेष) कु. सरोज माथुर

(यह काव्य दो मित्रों की अभिव्यक्ति से प्रणीत है ।)

हे ! भारत के 'अरस्तू'
लोग तुझे फिर से
पत्थर मारेंगे !
हे ! सुकरात तुझे
फिर से जहर
पिलाया जायेगा ।
हे ! प्यार के मसीहा
तुझे 'प्रेम' के
अपराध में, फिर से—
सूली पर चढ़ाया जायेगा !
'राम' तुम्हें फिर वन में
जाना पड़ेगा ।
'हरिश्चन्द्र' तुम्हें फिर
बम्शान में
बुलाया जायेगा !

(अधूरी) दिनेश शाही
भिलाई नगर
(म० प्र०)

जब तक कि····
इन्सान पत्थर है
उसका मस्तिष्क
खोखला है ।
मनुष्य अहंमी है
हृदय काला है
मानव भ्रमित है
तब····
मेरे 'अरस्तू'
मेरे 'सुकरात'
मेरे 'मसीहा'
एक बार फिर····
जन्म लेना
इस सृष्टि का
अवलोकन करने को ।
तब····
तुम्हारे लिये
श्रद्धा होगी
प्रेम होगा, अमृत होगा
क्या नहीं होगा ?
सब होगा....

संन्यास की सुगन्ध

सन्यासी परम स्वतंत्र है, उसे कभी कोई पकड़ नहीं सकते हैं।

सन्यास का मतलब है, प्रतिपल मृत्यु में जीना ।

सन्यास बाहर ही होता है अगर मौत भीतर दिखाई न पड़ गयी हो, और अगर भीतर दिखाई पड़ गयी मौत तो गृहस्थ बाहर होता है, संन्यासी भीतर हो जाता है ।

संन्यासी वह है जो सब लेबलों से मुक्त हो गया।

संन्यासी का अर्थ है, किसी की भी आज्ञा मानना छोड़ दिया।

संन्यासी को जब कोई गालियां दे तो जानना चाहिये कि वहां शब्दों के टंकार के सिवा कुछ भी नहीं है।

सन्यासी बोलता है; जितना पता होता है, उससे ज्यादा कभी नहीं कहता।

संन्यासी वह है जिसने सब खो दिया और रह गया—
शेष जो कभी नहीं खोया जा सकता ।

सन्यासी रोज खोजता है—रोज जीता है और अपनी आत्मा को बूढ़ी होने से बचा लेता है।

सन्यासी कहता है, कल जो आयेगा उसे जी लेंगे, अज्ञात का कोई भय नहीं है।

संन्यासी प्रार्थना करता नहीं है क्योंकि उसके रोयें-रोयें में प्रार्थना समायी हुई होती है।

सन्यास का मतलब है यह घोषणा कि हम अतीत को नमस्कार करते हैं और हर रोज हम नये होंगे, ताजे होंगे।

संन्यास समस्त इकाइयों के साथ जुड़ने से इन्कार है। असल में संन्यास इस बात की खबर है कि समाज हिंसा है और समाज के साथ खड़े होने में हिंसक होना ही पड़ेगा।

संन्यासी का खुलापन ही परमात्मा का द्वार है।

संन्यास यानी मात्र निर्द्वन्द चेतना।

संन्यासी परिधि पर प्रखर कर्म रत होता है लेकिन केन्द्र पर अकर्म-चुप-मौन और बिलकुल शांत रहता है ।

संन्यास अपने ही हाथों से अपनी मृत्यु की खबर अपने को दे देना है, कह देना कि जो चर्च में घंटी बज रही है बस, मेरे लिये ही बज रही है, वह जो रास्ते पर लाश गुजर रही है वह मेरी गुजर रही है। वह जो मरघट में आदमी जल रहा है, वह मैं जल रहा हूं ।

सिर्फ सिर घुटा लेने से संन्यास उपलब्ध नहीं होता है
संन्यास मैं उसे समझता हूं जो आमूल रुपांतरित कर दे।
संन्यास के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है जीवन को जानने का, पूरे अर्थों में जीने का।
संन्यासी अकेले में बैठा होता है तो भी करुणा बहती है।
संन्यासी के पास देने को केवल प्रेम ही होता हैं।
मूर्त ब्रह्म तो संसारी भी जान सकता है लेकिन, अमूर्त ब्रह्म सिर्फ सन्यासी ही जान सकता है।

संकलन : **मां योग मीरा**
(श्रीमती जयवंती शुक्ल)
जूनागढ़, गुजरात

एक बीज : एक फूल

मेरे प्रिय,

प्रेम। सूक्ष्म हैं मार्ग अहंकार के।

और फिर वह बहुरुपिया भी है।

विनम्रता के वस्त्रों में भी वह उपस्थित हो जाता है।

समर्पण की आड़ में तक वह अपने को बचाता है।

प्रार्थना में झुके हुए सिर के पीछे भी वह अकड़ कर खड़ा रहता है।

सेवा में भी वह मल्कियत करता है।

पैर दाबते हुए भी वह गर्दन पर कब्जा रखता है।

प्रेम में भी वह स्वामित्व बन जाता है।

और प्रार्थना में भी।

अहंकार की इस सूक्ष्म लीला को पहचानना—उसके सब रूपों में।

क्योंकि **अहंकार की पहचान** ही उसकी मृत्यु है।

अहंकार का अज्ञान अहंकार का जीवन है।

अहंकार का ज्ञान अहंकार की मृत्यु।

रजनीश के प्रणाम

२५-१-१९७१

प्रति :

केदार सिंहल

श्री रामकृष्ण सेवा केन्द्र

घंटाघर नीमच (म. प्र.)

नियम संख्या ८ के अनुसार 'युक्रांद' के स्वत्वाधिकार सम्बन्धी व अन्य विवरण

फार्म ४

१. प्रकाशन का स्थान	:	७९० राइट टाउन, जबलपुर
२. प्रकाशन का आवृत	:	मासिक
३. मुद्रक	:	श्रीपाल प्रिंटर्स, १९१ कोतवाली वार्ड, जबलपुर
४. प्रकाशक	:	अरविंद कुमार
५. संपादक	:	अरविंद कुमार
६. मुद्रक, प्रकाशक व संपादक की राष्ट्रीयता	:	भारतीय
७. स्वत्वाधिकारी	:	अरविंद कुमार

मैं अरविंद कुमार प्रमाणित करता हूं कि मेरे ज्ञान और विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सही है।

दिनांक : २० मार्च १९७१

हस्ताक्षर

अरविन्द कुमार

पत्र प्रेरणा

(आचार्य श्री द्वारा माँ योग क्रांति, जबलपुर को लिखा गया एक पत्र)

प्यारी मौनू,

प्रेम। जो जानता है उसके लिये परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

अर्थात् सभी कुछ वही है।

क्षुद्र भी तब विराट है और अणु भी आकाश है।

बूंद में समाये हैं तब समस्त सागर और नन्हीं सी किरण में महासूर्यों का आवास है।

तोझान (Tozan) उनमें से था एक जो कि जानते हैं।

सुबह ही सुबह तराजू पर तौल रहा था वह कपास।

और तभी एक शिष्य ने आकर उससे पूछा : "गुरुदेव ! बुद्ध कौन हैं ! क्या हैं ? कहाँ हैं ?" कृपा करें और स्पष्टतः बतायें मुझे।

तोझान ने कपास की ओर इशारा किया और कहा : "यहाँ पाँच सेर कपास में।"

रजनीश के प्रणाम

२०-१-७१

मानसेवी संपादक : अरविन्द कुमार। सह-संपादक : आलोक कुमार पाण्डे। व्यवस्थापक : श्री आर. आर. मिश्रा

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९० राइटटाउन, जबलपुर।

सौजन्य संपादक : श्री कनु सेठ, B. Sc. Agrl.

मुद्रण : श्रीपाल प्रिन्टर्स, १९१, कोतवाली वार्ड, जबलपुर से मानसेवी संपादक अरविन्द कुमार के लिये मुद्रित।

वर्ष : २ ॥ १ एवं १६ मार्च ७१ ॥ अंक : १७-१८ ॥ मूल्य : १.००

॥ वार्षिक मूल्य : १२.०० ॥

ENGLISH BCOKS OF ACHARYA RAJNEESH

I. TRANSLATED FROM ORIGINAL HINDI :

(1) Path to self Realisation	Page	198	Rs.	4.00
(2) Seeds of Revolutionary Thoughts	,,	232	,,	4.50
(3) Philosophy of Non-Voilence	,,	34	,,	0.80
(4) Who Am I ?	,,	145	,,	3.00
(5) Earthen Lamps	,,	247	,,	4.50
(6) Wings of Love and Random Thoughts	,,	166	,,	3.50
(7) Towards the Unknown	,,	54	,,	1.50
(8) From Sex to Super Consciousness			,,	6.00

In Press :

(9) The Mysteries of life and Death
(10) Journey Inwards
(11) Beware of Socialism
(12) God-Many Splendoured Love

II. ORIGINAL ENGLISH BOOKLETS :

(13) Meditation : A New Dimension	Page	36	Rs.	2.00
(14) Beyond and Beyond	,,	30	,,	2.00
(15) Flight of the Alone to the Alone	,,	36	,,	2.50
(16) L. S. D.—A Shortcut to False Samadhi				2.00
(17) Yoga : As Spontaneous Happening				2.00
(18) The Vital Balance				1.50

In Press :

(19) The Pathless Path
(20) The Occult Mysteries of Dreaming
(21) What is yoga ?
(22) This Insane Society
(23) Freedom From Becoming
(24) The will to the Wholeness
(25) The Forgotten Language
(26) The Great Challenge
(27) The Open Secret
(28) The Silent Music

III. CRITICISMS ON ACHARYAJI :

(29) Acharya Rajneesh : A Glimps by V. N. Vora	Page	24	Rs.	1.25
(30) Acharya Rajneesh : The Mystic of Feeling	,,	234	,,	20.00

।। मुखपृष्ठ : श्री कमलेश शर्मा, ब्राह्मणपारा, रायपुर ।।

।। युक्रांद ।।

।। वर्ष : २ ।। १ एवं १६ मार्च ७१ ।। अंक : १७—१८ ।।